ओ३म्

श्रद्धा पुष्पाञ्जलि का प्रथम पुष्प

* दैनिक सन्ध्या *

शब्दार्थ के साथ वृहद व्याख्या व कई सौ धार्मिक अनमोल वचन, सुन्दर भजनावली (भिन्न भिन्न कवि की रचनाओं से साभार ली गयी हैं) और प्राकृतिक अनुभूत नुस्खे व आसन प्राणायाम आदि।

××

संकलन कर्ता—श्री मुरारीलाल आर्य रुड़की

प्रकाशक—श्री मुरारीलाल आर्य रुड़की

संवत २०३८ वि० दयानन्दाब्द १५५ सं० १९८१

...ष्टि संवत १९६,०८, ४३,०८१

××

...क प्राप्त करने का स्थान:—

... समाज, रुड़की।

प्रथम बार १००० प्रति मूल्य प्रचारार्थ लागत मात्र १-७५

प्रस्तावना नं० १

नित्य कर्म विधियों में संध्योपासना का स्थान अनिवार्य और परम आवश्यक है। साधक को सायं और प्रातःकाल एकाग्रचित होकर संध्या करनी चाहिये। महर्षि दयानन्द से पूर्व भी संध्योपासना की पद्धतियां प्रचलित थी पर उनमें कई दोष आ गये थे। कहा जाता है कि महर्षि दयानन्द ने सबसे पहली सन्ध्या की पुस्तक आगरा से प्रकाशित करवायी थी। मैंने वह पुस्तक नहीं देखी है। इसके बाद १८७४ में उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश लिखा, और १८७[illegible] में पञ्चयज्ञ, महाविधि और संस्कार विधि। उन दोनों पुस्तकों में जो पद्धति संध्या की दी हुई है उसी का प्रचलन आज समस्त आर्य जगत में है। जहां कही भी आर्य प्रेमी बन्धु हैं देश में या विदेश में सभी एक पद्धति से संध्या करते हैं। सध्या करने के लिये कतिपय बातें आवश्यक हैं। (१) ईश्वर के प्रति सच्चा प्यार, (२) वेद मंत्रों के प्रति आस्था, (३) वेद मत्रों के अर्थों से परिचय, (४) सध्या के मन्त्रों के आधार पर जीवनचर्या का निर्वाह। ईश्वर में प्यार नहीं तो सध्या व्यर्थ है। वद मन्त्रों का उच्चारण मात्र किया गयां और मत्रों के भाव या अर्थ न समझे तो सध्या विफल हैं।

संध्या के मन्त्रों से प्रेरणा पाकर अगर जीवन पवित्र और शुद्ध न हुआ
ा ढकोसला मात्र है। आदरणीय श्री मुरारीलाल जी आर्य ने बड़े
संध्या का यह संस्करण जनता को सुलभ कराया है। आपने मन्त्रों
म शब्दों में समझाया है। और सध्या विधि भी संक्षेप रूप से
ाल जी वयोवृद्ध अनुभवी, निष्ठावान, आर्यसमाज के सेवक
उनके द्वारा सपादित यह संध्या सस्करण जनता का
क मन्त्रों क अर्थों को सरलता से समझ सकेगा।
रा लाभ उठावें यह मेरा बिनम्र आग्रह है।

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती

नं० २

वैदिक धर्म पर आस्था
आयु वृद्धावस्था की
में विज्ञान की
किन्तु आर्य

उठकर सब शौचादि, स्नानध्यान सन्ध्या हवन, आदि आर सूय अस्त के

नुसार संध्या विधि का परिशीलन किया है, साथ ही ध्यान विधि से अभ्यास भी। संध्या के प्रत्येक मन्त्र पर आपकी वैज्ञानिक दृष्टि दृढता से एकीभूत हुई है। आर्य जन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संध्या का अनुशीलन करे, ऐसा सोचकर ही आपने विचार प्रकट किये हैं। कृप्या प्रत्येक आर्यजन आपकी साङ्कोचित विचार चर्चाओं तक ही सीमित रहे। अपनी योग्यता के अनुसार भी बाबूजी बहुत ही अच्छा लिखा है। पांडित्य की दृष्टि से तो पंडितों के लेख पढने चाहिये. परन्तु एक चरित्रवान् आर्य का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए ? यदि यह जिज्ञासा है तो श्री बाबूजी लिखित संध्या विधि से लाभ अवश्य उठाना उचित ही है। प्रभु करें श्री बाबूजी शतायु हों और वैदिक सिद्धान्तों का प्रसार और प्रचार करते रहें।

स्वामी नारायण मुनि पूर्व नाम श्री लक्ष्मीनारायण शास्त्री एम०ए० साहित्याचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

दिनांक ३१-१२-७८

—★—

लेखक के दो शब्द

मैं संस्कृत विद्या से अनभिज्ञ होने के कारण विद्वानों की श्रेणी में नहीं आ सकता हूँ। हां बहुत समय से वैदिक ग्रंथों का स्वाध्याय कर रहा हूँ।

ऋषि दयानन्द जी कृत सम्पूर्ण लघु व गुरु ग्रंथ मेरे पास है जिनका अनुशीलन मैं सतत करता रहता हूँ। वेद, उपनिषदें, दर्शन व मनुस्मृति आदि सब ग्रंथ मुझे प्राप्त है, जिनका पाठ प्रति दिवस चलता रहता है। इसके अतिरिक्त मासिक व साप्ताहिक पत्र पत्रिकाओं को भी पढता रहता हूँ। कभी कभी इन पत्रिकाओं में सैधान्त सम्बन्धी मेरे लेख भी प्रकाशित होते रहते है। दैनिक पंच महायज्ञों का दृढता से मानने व करने वाला हूँ।

प्राय: सुनने में आता है कि सन्ध्या में मन नहीं लगता है। मन तो स्वयं नहीं, पर लगाने से लगा करता है। ऋषि के लिखेनुसार सूर्य उदय से पूर्व उठकर सब शौचादि, स्नानध्य न सन्ध्या हवन, आदि और सूर्य अस्त के

पश्चात सन्ध्या जाप कार्य नियम पूर्वक प्रत्येक नर नारी को करने अनिवार्य है। साथ ही प्रति दिवस उपरोक्त ग्रंथों का स्वाध्याय भी करना चाहिये है यज्ञ (अग्नि होत्र) आर्यों ने ही चालु किया है। हमारे आर्य घरों में होता ही नहीं। सन्ध्या के अर्थो की तो दूर की बात है उसका उच्चारण भी शुद्ध नहीं बोला जाता।

ऋषि के उपदेशानुसार नर नारी को बानप्रस्थी की आयु में प्रवेश करके तीनों ऐशणाओ अर्थात बित्त, पुत्र व लोक से छुटकारा पाकर तप और त्याग के जीवन से इस शरीर को ब्राह्मण का शरीर बनाना चाहिये जिससे मनुष्य जीवन के ध्येय अर्थात धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति हो। भगवान हम सब आर्य पुरुषो को सदबुद्धि प्रदान करे। मैंने इस लघु सन्ध्या की व्याख्या बड़े श्रम से लिखी है। इसका सशोधन स्व० स्वामी धर्मानन्द जी महाराज गुरुकुल कांगड़ी वालों ने किया था और सम्पादन श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी परिब्राजक दिल्ली निवासी ने किया है: इन दोनों महान आत्माओं का मैं हृदय से आभारी हूँ। इसकी प्रस्तावना भी दो वर्तमान उच्चकोटि के विद्वान सन्यासियों ने लिखी थी। अब परमात्मा की कृपा से इसके प्रकाशित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। मेरी इस पुस्तिका में व्योपारिक दृष्टि नहीं है अत: प्रचारार्थ व परोपकार के निमित इसका मूल्य लागत मात्र धरा है आशा है आर्य जन इससे लाभान्वित होंगे। ओ३म् शम्

विद्वानो का अनुचरणि—मुरारीलाल आर्य भूतपूर्व एस. डी. ओ. (इन्जीनियर)
१३८ पत्थर गली, रुड़की-२४७६६७ (उ०प्र०) ९-२-८१

शुद्धि पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४	४	मद्यवन्त	मघवन्त
८	१८	निग्रहाम्	निग्रहात्
८	१६	ध्मायनानं	ध्मायमानानां
१०	२१	अथ	अर्थ
११	२२	दक्षिथा	दक्षिणा
१२	२५	जहा	कहा
१३	२६	के	से
१४	१६	सम्पूण	सम्पूर्ण
१५	१२	मोज	मोक्ष
१६	२५	पुरतात	पुरस्तात
१८	१०	कमंणा	कमंणा धर्माथं
२०	५	निघन	निर्धन
२२	१४	मणुर	मधुर
२७	३	आसन पर आसन पर	आसन पर
२८	२४	वन्धु अपूर्वं	बन्दर अश्व
२६	१६	शुक्र	शुल्क
२६	२६	दान न देते	दान देते
३०	३	श्रेय: प्राकृतिक	प्रेय: प्राकृतिक
३०	१८	करो वृद्ध	व्योवृद्ध
३०	२३	दूर्णं	पूर्ण
३०	२५	मूल्यमान	मूल्यवान है
३१	८	मोक्षप्ते	मोक्षयो
३१	१८	रहा जुदा	रहा गदा
३२	२१	गरिशम	ग्रीशम
३४	२३	निबल	निर्बल
३६	१६	भा	भी
३६	१७	रोह	रोहे
३६	२४	तदि	यदि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३७	२५	अक्षमान ही	यक्षमा नहीं
३८	१६	यही	ही
४०	१३	पाप का	पाप की नाव
४३	६	यो गमे	योग में
४४	३३	दर्दन	गर्दन
४५	६	कूछासी	फू घासी
४५	२३	विश्कर्ता	विश्वकर्ता
४५	२४	ईशा	ईश
४६	८	लखे	लखे
४६	८	रूप ही	रूप की
४७	२०	तेरो तरुती	तेरे जीवन की तरु
४७	२२	पोधा	पोथा
४९	५	दोसी	दोऊ
५१	१४	गारे	द्वारे
५४	१	नए	नर

***

ओ३म्

प्रातः काल के प्रार्थना मंत्र ।

१. ओ३म् ! प्रातरग्नि प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भग पूषण ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोमुत रुद्रं हुवेम ॥

पदार्थ—(प्रातः, अग्नि) प्रभात बेला में स्वप्रकाश स्वरुप परमात्मा की (प्रातः, इन्द्र) प्रातः काल परम ऐश्वर के दाता (हवा महे) का हम आहवान और सेवन करते हैं (प्रातः, मित्रा वरुणा) प्रातः काल में प्राण व उदान के समान प्रिय और शक्ति शाली (प्रातः अश्विना) प्रातः काल में सूर्य व चन्द्र के उत्पन्न कर्ता प्रभु की, (प्रातः भग) प्रातः काल में भजनीय ईश्वर की जो (पूषणं ब्रह्मणः पति) पुष्टि कर्ता ब्रह्मान्ड और वेदों का स्वामी है (प्रातः सोम, उत, रुद्रं हुवेम) प्रातः काल में शान्ति दायक और पापियों को उनके की तत्कर्मानुसार दड देने वाले की हम भक्ति करें ।

२. प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो बिधर्ता ।
आध्रश्चिद्य मन्य मानस्तुरश्चिद्राजा चिद्य भग भक्षित्याह ॥

पदार्थ—(प्रातः) पांच घडी रात्री रहे (जितं) जय शील प्रभु की (भगम्, उग्र) ऐश्वर्यशाली व तेजस्वी की (हुवेम वय, हम सेवन करे (पुत्र) जैसे पुत्र परिवार की रक्षा करता है उसी प्रकार भगवान ससार की रक्षा करता है (यः, अदितेः) जो, अखंड अविनाशी (बिधर्ता) और विविध पदार्थो को धारण किये है (यं, चित) जिस, किसी अर्थात सबका (आध्रः, मन्यमानः) आश्रय स्थान व जाना माना हुआ है (तुरः चित, राजा) शीघ्रकारी बलवान और शोभन युक्त राजा भी (यं, चित, भग भक्षि) जो, चेतन, भगवान है, उसका सेवन कर इति, आह) ऐसा उपदेश है ।

३. भग प्रणेतर्भग सत्य राधो भग मां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग, प्रनृभिर्नृ वन्तः स्याम ॥

पदाथ—(भग, प्रणेतः, भग, सत्य राधः) भजनीय प्रेरक, ऐश्वर्यशाली, विद्या रुपी सत्य धन का दाता (भग्, इमां, धिय, ददत) वह आप भगवान, इस बुद्धि को दीजिये, (उत, वा) और उत्तमता से, हमारी रक्षा कीजिये (भग, णः, जनय गोभि, अश्वैः) हे ईश्वर ! हमें बढ़ाइये गौ व घोड़े आदि पशुओं से

(भग, नृभिः, नृवन्तः, प्रस्याम) हे भगवान नेता मनुष्यों के साथ, वीर मनुष्य वाले, हम हो) ॥

४. उते दानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उतमध्य अह्नाम ।
उतोदिता मघवन्तसूर्यस्य वय देवानां सुमतौ स्याम ॥

पदार्थ--(उत, इदानीं, उत, मध्य अह्नाम, भगवन्तः उत, प्रपित्व, स्याम) इस समय और आगामी दिनों में, उत्तमता से, ऐश्वर्यशाली और प्रकृष्ट पदार्थों की प्राप्ति में हम हों (उत, मघवन) और, सब प्रकार धनों के दाता (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय काल से (वयं देवानां, सुमतौ, स्याम) हम लोग विद्वानों की सुमति में रहे ।

५. भग एव भगवां अस्तु देवा स्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥
पता—ऋग्वेद० ७/४१/० मन्त्र १ से ५ ।

पदार्थ—(भग, एव, भगवान्, अस्तु) हे भगवानः, आप ही, पूजनीय देव, हो और हूजिये, (तेन, वयं देवः) जिससे हम विद्वान लोग (भगवन्तः, स्याम) सकल ऐश्वर्यशाली, होवें. (तत्वा, भग, सर्वाः, इज्जोहवीति) उस आपको, हे भगवन्, सब ही, बार बार पुकारते हैं, (स, भग, नः पुरएता, इह, भव) वह भगवान आप, हमारे, अग्रगामी, यहां अर्थात इस जीवन में, इस सृष्टि में, हूजिये ।

—★—

वैदिक सन्ध्या

दैनिक पंचमहायज्ञों में प्रथम 'ब्रह्मयज्ञ' को ही वैदिक सन्ध्या की संज्ञा दी गई है । इसी के अन्तर्गत वेदोक्त ग्रन्थों का स्वाध्याय भी आ जाता है। ब्रह्म+यज्ञ=ब्रह्म का अर्थ महान् परमात्मा, यज्ञ का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, और दान । यहाँ अर्थ हुआ 'परमात्मा की संगति करना' अर्थात् प्रातः व सायं ध्यान द्वारा समाधिस्थ होकर भगवान् की उपासना करना ।

सन्ध्या के चार भाग हैं—

१. प्राणायाम मन्त्र तक चार मन्त्रों का पहला भाग है । इसमें शरीर को स्वस्थ व स्वच्छ रखने का विधान है । बिना स्वस्थ शरीर के कोई कार्य

नहीं हो सकता। साथ ही इन्द्रियों की पवित्रता का होना भी अनिवार्य है।

२. दूसरा भाग है अघमर्षण, अर्थात् पापों को नष्ट करना। गत जन्मों में किये कर्मों को भोगना और भविष्य में पाप-कर्मों को न करना।

३. तीसरा भाग है मनसा-परिक्रमा के छः मन्त्रों का, अर्थात् भगवान् हमारी छः दिशाओं में किस प्रकार रक्षा करता है।

४. चौथा भाग है उपस्थान मन्त्रों का, जिनके द्वारा चित्त की एकाग्रता से प्रभु की समीपता व सान्निध्य प्राप्त करना होता है। अन्त में साधक प्रार्थना करता है कि इस जपोपासना द्वारा धर्म के साथ अर्थ को प्राप्त करे, धर्म के साथ ही अर्थ का उपभोग हो, इस प्रकार धर्म के साथ आचार-विचार को शुद्ध करके मोक्ष की प्राप्ति हो, जो मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य है।

अथ सन्ध्या-तत्त्व-ज्ञान

मनु जी की आज्ञा है—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ —मनु० २।१०३

अन्वय व शब्दार्थ—(यः तु न तिष्ठति, पूर्वाम्) जो नहीं करता प्रातः-काल की सन्ध्या, (च, यः पश्चिमाम्, न, उपास्ते) और जो सायंकाल की सन्ध्या नहीं करता (सः, शूद्रवत्, द्विजकर्मणः, सर्वस्मात, बहिष्कार्यः) उसको शूद्र के समान, द्विज के सब कर्मों से निकाल देना चाहिये।

प्रातःकाल की सन्ध्या सतोगुणी वृत्ति के साथ भगवान् का ध्यान करना।

सायं की सन्ध्या—दिन के रजोगुण की समाप्ति पर सायंकाल के सोम में भगवान् का ध्यान करना। सन्ध्या द्वारा जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता।

पहले शौचादि की निवृत्ति, पश्चात् जलादि से बाह्य शरीर की शुद्धि और राग-द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि भी होती है; इसमें मनु जी की साक्षी है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति, मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति॥ मनु० ५।१०९

शब्दार्थ—(अद्भिः) जलों से (गात्राणि) शरीर की (शुद्धयन्ति) शुद्धि होती है (मनः सत्येन शुद्धयति) मन सत्य से शुद्ध होता है (विद्यातपोभ्यां भूतात्मा) विद्या और तप दोनों से सूक्ष्म शरीर की (बुद्धिः ज्ञानेन शुद्धयति) बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

पहली क्रिया—गायत्री मन्त्र का जाप; बिखरे बालों की रक्षार्थ शिखा की गाँठ।

आचमन मन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥
—यजु० ३६।१२

अर्थ—(श, नः, देवीः, आपः, अभिष्टये, पीतये) हमें दिव्यगुण युक्त, जलों की धाराएँ, मनोवाञ्छित तृप्ति के हेतु सुखदाई हो। (नः अभिस्रवन्तु, शंयोः) और हमारे ऊपर सब ओर से सुखों की वर्षा करें। यह भौतिक अर्थ है, क्योंकि (आपः। जिसका अर्थ जल है स्त्रीलिंग है और बहुवचन में प्रयोग होता है, अतः इसका अर्थ जलों की धाराएँ हुआ। दूसरा आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है देवी) सबका प्रकाशक (आपः) सर्वव्यापक परमात्मा (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए (नः, शः, भवन्तु) हमें कल्याणकारी होवे। (नः, शंयोः, अभिस्रवन्तु) और हमारे ऊपर सुख की, सब प्रकार से वर्षा करे।

अथेन्द्रियस्पर्शः

बायीं हथेली में थोड़ा-सा जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से निम्न मन्त्रों से दायीं व बायीं इन्द्रियों का स्पर्श करे जिससे इन्द्रियों में दृढ़ता और मन में एकाग्रता हो।

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुश्चक्षुः।
ओं श्रोत्र श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे।

अर्थ—जिह्वा में दो शक्तियां है; एक स्वाद लेने की अर्थात् ज्ञानेन्द्रि का दूसरी बोलने की अर्थात् कर्मेन्द्रिय की। अतः वाक्-वाक् शब्दों का दो बार उच्चारण किया गया। प्राणः-प्राणः (नासिका के दोनों नथुने), दोनों चक्षु

दोनों कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, दोनों भुजायें, हाथ की हथेली व पीठ में यश और बल हो, अर्थात् हथेली से धन कमावें, और पीठ अर्थात् मुट्ठी बाँधकर दान करें।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। —अ० ३।२४।५

अर्थात् सौ हाथों (साधनों) से कमावें और उस धन को हजारों हाथों में पहुँचावें।

'नाभि' प्राणी के शरीर में अन्न-रस पहुंचाती है। यह शरीर-रूपी वृक्ष की मूल है। बालक गर्भ में इसी नाल द्वारा अपनी माता से अन्न-रस प्राप्त करता है। इस मन्त्र से शरीर में बल व यश माँगा है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं होगा तो यश कैसे प्राप्त होगा ?

यहां एक शंका होती है कि इन्द्रियों में शक्ति और यश तो चोर व डाकुओं में भी होता है। कोई-कोई डाकू तो निर्धन व्यक्तियों की धन से सहायता भी करता है। क्या इस तरह का मनुष्य बनना उचित होगा ? इस शंका का निवारण अगले मन्त्र से हो जावेगा।

अगली क्रिया जल मार्जन (छिड़कना) हैं। जिससे शरीर का आलस्य दूर हो और मन सावधान रहे।

मार्ज्जन-मन्त्राः

ओं भूः पुनातु शिरसि।
प्राणस्वरूप प्रभु मेरे मस्तिष्क को पवित्र करे।
ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः
दुःखनाशक प्रभु मेरे नेत्रों को पवित्र करे।

ओं स्वः पुनातु कण्ठे।
सुखस्वरूप प्रभु मेरे कण्ठ (गले) को पवित्र करे।

ओं महः पुनातु हृदये।
महान् प्रभु मेरे हृदय को पवित्र करे।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्।
जगदुत्पादक मेरे नाभि-चक्र को पवित्र करे।
ओं तपः पुनातु पादयोः।

सामर्थ्ययुक्त प्रभु मेरे पर्गों को पवित्र करे।

ओं सत्यं पुनातु पुनः, शिरसि।

सत्यस्वरूप परमात्मा मेरे मस्तिष्क के विचारों को सर्वदा पवित्र करे।

ओं ख ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

सर्वव्यापक प्रभु मेरे पूरे शरीर को पवित्र करे। (डाकुओं में बल और यश के साथ उनके मन में पवित्रता नहीं होती. आक्रमण करना ही उनका उद्देश्य है।) इसके पश्चात्—

प्राणायाम-मन्त्रः

प्राणायाम के लिए निश्चल आसन से बैठें। पद्मासन या सिद्धासन, या जिस आसन से बैठने में सुख-शान्ति प्राप्त हो वैसे बैठा जाय, जिससे मन चंचल न हो।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः।
ओं तपः। ओं सत्यम्॥ —तैत्ति० प्रपा० १०। अनु० २७

अर्थ—परमात्मा प्राणों से प्यारा, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, महान् से महान्. सम्पूर्ण सृष्टि का उत्पादक पूर्ण सामर्थ्यवान् एकरस रहने वाला और सत्यस्वरूप है। प्राणायाम से प्राणवायु सूक्ष्म और बलवान् होती है; इसमें मनु जी की साक्षी है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ —मनु० ६।७१

अर्थ—(यथा, हि, ध्मायमानानां, धातूनां मलाः दह्यन्ते) जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मैल जल जाते हैं (तथा, इन्द्रियाणां, दोषाः दह्यन्ते) उसी प्रकार इन्द्रियों के सब दोष क्षीण हो जाते हैं (प्राणस्य) प्राणों को (निग्रहात्) रोककर वश में करने से।

प्राणायाम की विधि 'सत्यार्थ प्रकाश' के तीसरे समुल्लास में लिखी है। यदि वृद्ध व्यक्तियों और स्त्रियों के लिए कुछ कठिन हो तो श्वास को बाहर व भीतर बिना रोके करें, अर्थात् श्वास को बाहर निकालना, तुरन्त ही प्राणों को भीतर लेना, चार-पाँच मिनट तक लगातार करते रहना चाहिए; साथ ही मन से मन्त्र का जाप करते रहना। यह क्रिया किसी खुले शुद्ध स्थान

में सूर्य के उदय से पहले और अस्त के पश्चात् करनी चाहिये। जब उदर खाली व शरीर हल्का हो, तब प्राणायाम करना चाहिये। इससे चित्त एकाग्र व शान्त हो जाता है।

अघमर्षण मन्त्राः

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

अर्थ—(ऋतं, च, सत्यं, अभीद्धात, च, तपसः अध्यजायत) ईश्वरीय नियम अर्थात् वेद-ज्ञान और दृश्यमान् सृष्टि, प्रभु के अनन्त ज्ञान तथा सामर्थ्य से उत्पन्न हुए (ततः रात्रि अजायत, ततः, समुद्रः, अर्णवः) उसी प्रभु से प्रलयरूपी रात्रि उत्पन्न हुई थी, उसी प्रभु से आकाशस्थ समुद्र बना।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥

अर्थ—(समुद्रात्, अर्णवात्, अधि, सवत्सर, अजायत) जल से पूर्ण समुद्र के पश्चात् शरद्, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुएँ उत्पन्न हुई, (अहः, रात्राणि, विदधद् बिश्वस्य, मिषतः वशी) दिन व रात्रि को बनाते समय, सम्पूण चेतन प्राणियों को वश में रखने वाले परमेश्वर के द्वारा।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥
—(ऋ० मण्डल १०, सू० १९०, मं० १-३)

अर्थ—सूर्याचन्द्रमसौ, धाता, यथा, पूर्वम्, अकल्पयत्, दिवं, च, पृथिवीं, च, अन्तरिक्षम्, अथ, स्व.) सूर्य, चन्द्र दोनों को विधाता ने जैसे पूर्व-सृष्टि में बना लिया था, (ऐसे ही) द्युलोक,पृथिवी लोक और इन दोनों लोकों के बीच अन्तरिक्ष लोक और दूसरे लोक-लोकान्तरों को भी बना लिया था।

यहाँ शंका होती है कि उपर्युक्त तीनों मन्त्रों से सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिखाया गया है, इनसे पाप-निवारण कैसे होगा? इस शका का उत्तर निम्न प्रकार है—

यह पापनिवारण-धर्मोपदेश सृष्टि को उत्पत्ति से ही आरम्भ होता है, क्योंकि सृष्टि में ही जोवात्मा ने शरीर द्वारा जो पाप या पुण्य-कर्म इस

वर्तमान या गत सृष्टि में किये थे, उनका भोग जीव को शरीर द्वारा सृष्टि में ही भोगना पड़ता है। मनुष्य को विवेक-बुद्धि प्राप्त हुई है, जिससे वह प्रभु की महानता व सर्वज्ञता का विवेचन करे कि वह सृष्टि की रचना समयानुसार गतकल्पों की भाँति करता रहता है और प्राणियों को उनके कर्मानुसार मनुष्य, पशु पक्षी आदि शरीरों को प्रदान करता है। तीन पदार्थ अर्थात् परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति अनादि व अनन्त हैं। इनके अतिरिक्त तीन पदार्थ और हैं अर्थात् सृष्टि, प्राणियों के शरीर और उनके सचित कर्म जो प्रवाह से अनादि व अनन्त हैं, जैसे दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन या प्रलय के पश्चात् सृष्टि और सृष्टि के पश्चात प्रलय, अतः योग-दर्शन साधनपाद के सूत्र १३ के अनुसार—

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:।

अर्थात् जब तक कर्मों का मूल बना रहेगा, उसके फलस्वरूप किसी-न-किसी जाति अर्थात् योनि के बन्धन में यह जीव बना रहेगा, और यह मनुष्य यदि गत शेष कर्मों को सन्तोष के साथ भोगता रहे और भविष्य में निष्काम कर्म करे तो एक समय आयेगा कि उसके सब कर्म निःशेष हो जावेंगे। शरीर तो कर्मों के आधार पर मिलता है। 'चाणक्यनीति' के अनुसार—"नष्टे मूले नैव फल न पुष्पम्" अर्थात् 'कर्मों के मूल के नष्ट होने पर आवागमन के चक्कर से छूट जावेगा और मोक्ष को प्राप्त हो जावेगा। इसी का नाम पाप का नष्ट होना है।

अब इसके पश्चात् फिर आचमन-मन्त्र—

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शयोरभिस्रवन्तु नः॥
(यजु० ३६। १२)

इसका अर्थ आरम्भ में लिखा जा चुका है। इन मन्त्र से तीन आचमन करने चाहिए जिससे कफ की निवृत्ति हो, मन्त्र के उच्चारण करने में कठिनाई न हो और बीच में खांसना न पड़े। यदि सन्ध्या-समय जल प्राप्त न हो तो आचमन न करें, परन्तु मन्त्र का उच्चारण अवश्य करें।

इसके पश्चात् गायत्री-मन्त्र के अर्थ का मन में विचार करें और ईश्वर के गुणों व उपकारों का चिन्तन करें कि वह ईश्वर हमारी सब ओर से सहायता करता है।

मनसापरिक्रमा-मन्त्राः

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्त वो जम्भे दध्मः ।।१।।

अर्थ—(प्राची) पूर्व या सामने की (दिक्) दिशा में (अग्नि) स्वप्रकाश-स्वरूप अग्रणीय परमात्मा (अधिपतिः) सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है, वह (असितः) अन्धकार से (रक्षिता) रक्षा करने वाला है (आदित्याः इषवः) सूर्य-किरणों रूपी बाणों द्वारा, (तेभ्यः, नमः) उनके लिए नमस्कार है, (अधिपतिभ्यः, नमः) पालक स्वामी के लिए नमस्कार है, (रक्षितृभ्यः, नमः) रक्षा करने वाले के लिए नमस्कार है, (इषुभ्यः, नमः) रक्षा के साधन किरण रूपी बाणों के लिए नमस्कार है, (एभ्यः, अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है। अर्थात हे परमात्मा ! तेरे लिए बारम्बार नमस्कार है। (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करते हैं (यं, वय, द्विष्मः) या जिनके प्रति हम द्वेष करते हैं, (तं, वः, जम्भे, दध्मः) उन द्वेषों को आपके दडरूपी न्याय में रखते हैं।

भावार्थ—पूर्व दिशा में उस परमात्मा को अग्नि अर्थात् सूर्य की भाँति प्रकाशक कहा है जो रात्रि की समाप्ति पर तमो-रूपी अंधियारे को सूर्य की किरणों द्वारा नष्ट करता है । सूर्य के उदय होते ही अपने-अपने घरों से निकलकर सब जन आगे-आगे जाकर अपने-अपने कार्यो में लग जाते हैं । यदि कोई जाने-अनजाने एक-दूसरे के कार्य करने के रास्ते में बाधक हो तो परमात्मा अपनी सर्वज्ञता से उसको जान लेता है और अपनी सर्वशक्तिमत्ता से जो न्याय करे वह सबको मान्य होता है।

दक्षिथा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो० ।।२।।

अर्थ—(दक्षिण, दिक्, इन्द्रः, अधिपतिः तिरश्च, राजी, रक्षिता, पितर, इषवः) दक्षिण अर्थात् दायें हाथ की दिशा में, ऐश्वयंशाली ईश्वर हमारा स्वामी है, जो टेढ़ें चलनेवाली पंक्तियों व समूह से बचाता हैं, पितर गण रक्षकों के बाणों द्वारा, (तेभ्यः, नमः) उनके लिए नमस्कार है, (अधिपतिभ्यः नमः) पालक स्वामी के लिए नमस्कार है, (रक्षितृभ्यः नमः) रक्षा करने वाले के लिए नमस्कार है, (इषुभ्यः नमः) रक्षा के साधन किरणें रूपी बाणों के

लिए नमस्कार है, (एभ्य:, अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है। अर्थात् हे परमात्मा ! तेरे लिए बारम्बार नमः, नमस्कार है। (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करते हैं। (य, वय, द्विष्मः) या जिनके प्रति हम द्वष करते हैं त, वः, जम्भे. दध्मः) उन द्वेषों को आपके दंड-रूपी न्याय में रखते हैं।

भावार्थ – हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तुम दायें हाथ के समान वाम-मार्गियों अर्थात् पथभ्रष्टों से पालना करने वाले पितरजनों द्वारा हमारी रक्षा करते हो। यह पितर कौन है ? वर्णव्यवस्था के अनुसार पहले ब्राह्मण, जो ज्ञान देकर अज्ञानियों से हमारी रक्षा करते हैं; दूसरे क्षत्रिय, जो हमें भयभीत करनेवाले धूर्तों से बचाते हैं; तीसरे वैश्य, जो हमारो अभाव से भाव द्वारा सहायता करते है; चौथे शूद्र भाई जो शरीर से सेवा द्वारा हमारे कार्यों को देखरेख करते हैं।

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः, पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो० ॥३॥

अर्थ—(प्रतीची, दिक् पश्चिम या पीठ-पीछे की दिशा में (वरुणः) उत्तम ग्रहण करने योग्य परमेश्वर (अधिपतिः) स्वामी है. (पृदाकू, रक्षिता) विषधारी जन्तुओं और विषैली वस्तुओं से रक्षा करता हैं। (अन्नम्, इषवः) अन्न, ओषधि व घी आदि पदार्थों द्वारा जो बाण-रूपी साधन हैं (तेभ्यः, नमः) उनके लिए नमस्कार है, (अधिपतिभ्यः, नमः) पालना करने वाले मालिकों के लिए नमस्कार है, (रक्षितृभ्यः, नमः) रक्षा करनेवाले के लिए नमस्कार है, (इषुभ्यः. नमः) रक्षा के साधन ओषधि-रूपी बाणों के लिए नमस्कार है, (एभ्यः, अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है। अर्थात् परमात्मा के लिए बार-बार नमस्कार है। (यः, अस्मान्. द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करते हैं, (य, वयं, द्विष्मः जिनके प्रति हम द्वेष करते हैं, (तं, वः, जम्भे, दध्मः) उन द्वेषों का आपके दण्ड रूपी न्याय मे रखते हैं।

भावार्थ—इस पीठ-पीछे की दिशा में प्रभु को उत्तम अपनाने योग्य कहा गया हैं कि जो पीठ-पीछे अर्थात् अनजाने में या जान-बूझकर कोई व्यक्ति हम पर आक्रमण करे, या बिच्छू, सर्प आदि विषैले जन्तु काट लेवें तो भिन्न-भिन्न औषधि, घी आदि अन्न जो परमात्मा ने हमारे लिए उत्पन्न किये हैं, चिकित्सा द्वारा उन ओषधियों से हमारी जीवन-रक्षा हो जाती है।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो० ॥४॥

अर्थ—(उदीची, दिक्, उत्तर की दिशा में (सोमः, अधिपतिः) शान्ति-

स्वरूप प्रभु हमारा स्वामी है, (सु+अजः, रक्षिता) स्वयं उत्पन्न होने वाली शरीर की व्याधियों से हमारी रक्षा करता है, (अशनिः, इषवः) बिजली के यन्त्रों व साधनों-रूपी बाणों द्वारा, (तेभ्यः, नमः) उनके लिए नमस्कार है, (अधिपतिभ्यः, नमः) पालक स्वामी के लिए नमस्कार है, (रक्षितृभ्यः, नमः) रक्षा करनेवाले के लिए नमस्कार है, (इषुभ्यः, नमः, रक्षा के साधन, विद्युत्-रूपी बाणों के लिए नमस्कार है, (एभ्यः, अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है। अर्थात् हे परमात्मा! तेरे लिए बारम्बार नमः, नमस्कार है। (यः, अस्मान, द्वेष्टि (जो हमसे द्वेष करता है, (य, वयं, द्विष्मः) या जिनके प्रति हम द्वेष करते हैं, (त, वः, जम्भे, दध्मः उन द्वेषों को आपके न्याय-रूपी दण्ड में रखते हैं।

भावार्थ—उत्तर दिशा में पहाड़ी प्रदेश ग्रीष्म ऋतु में बड़े सुख व शान्तिदायक होते हैं, इसी से यह प्रदेश सोम कहे जाते हैं और उनके रचयिता परमात्मा को वेद-मन्त्र में सोम कहा गया है। बिजली जलभरे बादलों की रगड़ से उत्पन्न होती है। जलों का स्रोत पहाड़ हैं, अर्थात् उत्तर के पहाड़ों स सब छोटी-बड़ी नद-नदियाँ जलों से भरी समतल प्रदेशों में आती हैं और इनके जलों को बाँधकर यन्त्रों द्वारा बिजली उत्पन्न की जाती है। मनुष्यों के शरीरों में स्वयं उत्पन्न हुए कष्टों की, रुधिर व प्राणों की गति की विद्युत द्वारा चिकित्सा होती है। अतः विद्युत् सब प्रकार से सुख को बढ़ाने वाली है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है—आर्य जाति में यह प्रथा है कि जब घर में कोई मृत्यु होती है तो मृतक के पैर दक्षिण दिशा में किये जाते है यह एक वैज्ञानिक बात है, हमरा कोई कार्य बिना हेतु के नहीं होता। जीवात्मा प्राणों के साथ शरीर से निकल जाता है। तत्पश्चात् शरीर की गर्मी भी धीरे-धीरे निकल जाती है, पर मुँह की गर्मी कुछ शेष रह जाती है। बगल में जब थर्मामीटर नहीं लगता तो मुँह में लगाया जाता है। बिजली का बहाव उत्तर दिशा से होता है। वह सिर में टकराकर शेष गर्मी का पैरों की ओर से बाहर निकाल ले जाती है। इसी के जीवित पुरुष को दक्षिण की ओर पैर करके सोने से निषेध किया है। यह एक डरावा है, नहीं तो कोई भी न माने; क्योंकि यदि जीवित व्यक्ति दक्षिण की ओर पग करके सोयेगा तो कुछ दिनों में तो नहीं, कुछ मासों में उसके सिर में बिजली के टकराने से दर्द होने लगेगा।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो० ॥५॥

अर्थ—(ध्रुवा, दिक्) नीचे की दिशा में (विष्णु) सृष्टि में व्यापक परमात्मा (अधिपतिः) स्वामी है, (कल्माषग्रीवः, रक्षिता, वीरुधः, इषवः) काली मटियाली टेढ़ी-मेढ़ी गर्दनवाली जहरीली गैसों से रक्षा करता है (जिनको आंग्ल भाषा में Carbonic Acid gases कहते हैं) वृक्ष-रूपी बाणों द्वारा, (तेभ्यः, नमः) उनके लिए नमस्कार है, (अधिपतिभ्यः नमः) पालक स्वामी के लिए नमस्कार है. (रक्षितृभ्यः, नमः) रक्षा करने वालों के लिए नमस्कार है (इषुभ्यः, नमः) रक्षा के साधन वृक्ष-रूपी बाणों के लिए नमस्कार है, (एभ्यः अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है। अर्थात् हे परमात्मा ! तेरे लिए बारम्बार नमस्कार है।)यः, अस्मान् द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है, (य, वयं द्विष्मः, जिनके प्रति हम द्वेष करते हैं, (त, वः, जम्भे, दध्मः) उन द्वेषों को आपके न्याय-रूपी दण्ड दण्ड में रखते हैं।

भावार्थ—सर्वव्यापी प्रभु नीचे अर्थात् पृथिवी से रात्रि में निकलने वाली जहरीली गैसों को नष्ट करता हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। इसी से रात्रि में वृक्ष के नीचे सोने का निषेध है। वृक्ष इन जहरीली गैसों को चूस लेते हैं और फिर स्वास्थ्यप्रद वायु को (जिनको आंग्ल भाषा में Oxygen gas कहते हैं) निकालते हैं। इसी से सम्पूर्ण सृष्टि में हर पेड़ों के काटने की मनाही है। इतना ही नहीं, नगरों के मुहल्लों में और बाजारों में भी पेड लगाये जाते थे। वे पीपलतल्ला, नीमतल्ला, बड़तल्ला, पिलखनतल्ला आदि नामों से जाने जाते थे। मरुस्थल भूमि में भी पेड़ लगाये जाते थे ताकि वर्षा हो और भूमि उपजाऊ बने। आर्यों में जिस परिवार में सन्तति नहीं होती थी, वे व्यक्ति विशेषकर उद्यान (बागान) लगाया करते थे; और जो व्यक्ति वृक्षों में जीव मानते हैं, उनके अनुसार हरे वृक्षों का काटना तो जीव-हत्या के ही समान है। परन्तु धन के लालची महँगाई के समय में हरे वृक्षों को ही नहीं, फलदार पेडो को भी कटवा देते हैं। यह कार्य प्राकृतिक सम्पदा को नष्ट करना है जिसका परिणाम अशुभ होता है।

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।
तेभ्यो० ॥६॥ —(अथर्व० ३।२७।१—६)

अथ—(ऊर्ध्वा, दिक्) ऊपर की दिशा में (बृहस्पतिः) सबसे बड़ा प्रभु (अधिपतिः) सकल जगत् का स्वामी है, रक्षिता) जो हमारी रक्षा करता है, (वर्षम्, इषवः) वर्षा-रूपी बाणों द्वारा (श्वित्रः) सूखे से। (तेभ्यः नमः) उनके लिए नमस्कार है. (अधिपतिभ्य, नमः) पालक स्वामी के लिए नमस्कार है,

(रक्षितृभ्य। नमः) रक्षा करने वाले के लिए नमस्कार है (इषुभ्यः नमः) रक्षा के साधन वर्षा-रूपी बाणों के लिए नमस्कार है, (एभ्यः अस्तु) इन सबके लिए नमस्कार है, अर्थात् परमात्मा के लिए बारम्बार नमस्कार है। (यः अस्मान्: द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है, (य वयं द्विष्मः जिनके प्रति हम द्वेष करते हैं (तं वः जम्भे दध्मः) उन द्वेषों को आपके न्यायरूपी दण्ड में रखते हैं।

भावार्थ—वर्षा आकाश से होती हैं। वर्षा के विलम्ब से होने से गर्मी बहुत पडने लगती हैं, फसल का रंग सूखकर सफेद-सा होने लगता है, बच्चों के शरीरों पर सफेद मुँह के फोड़ें-फुंसी निकलने लगते हैं। तब वर्षा होने पर खेती हरी-भरी हो जाती है और बच्चों का कष्ट भी शान्त हो जाता है।

अथोपासना मन्त्राः

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

—यजु० ३५।१४

अर्थ—(तमसः, परि, स्वः, उत्तरम्, देवं, देवत्रा, सूर्यम्, ज्योतिः, उत्तमम्, वयं, पश्यन्त, उत् अगन्म) हे प्रभो ! आप अज्ञात-अन्धकार से, परे हो, सुखस्वरूप हो, प्रलय के पश्चात् भी वर्तमान, दिव्य गुण-युक्त, देवों के देव, सूर्य की भाँति सबके जीवन-दाता, प्रकाशस्वरूप, सबसे उत्तम हो, हम ऊँचे उठें, ताकि ज्ञान-दृष्टि द्वारा आपको प्राप्त करें अर्थात् साक्षात्कार मिले।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उस प्रभु की समीपता से, उसके गुणों को धारण करके अपनी आत्मा को ऊँचा उठाओ और उस प्रभु को साक्षात् करो, तभी तुम मोक्ष को प्राप्त करोगे।

उदु त्यं जातवेदसं देव वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥१॥

—यजु० ३३ ३१

अर्थ—(त्यं, जातवेदसं, देव, विश्वाय, सूर्य्यम्, दृशे, केतवः उत्, उ, वहन्ति) उस परमात्मा को जो सब उत्पन्न हुए जगत् का ज्ञाता है, देव को, जो सब जड़-चेतन पदार्थों की सूर्य-रूपी आत्मा है, दिखाने और चेताने के हेतु पहाड़ व समुद्र आदि प्राकृत दृश्यों को, भली प्रकार दिखाते और संकेत करते हैं उस परमात्मा की सत्ता का।

भावार्थ हे मनुष्यो ! उस प्रभु का साक्षात्कार तो योगियों को होता है, परन्तु साधारण व्यक्ति को प्रभु की सत्ता का भान अनुमान-प्रमाण द्वारा हो जाता है, यानि सृष्टि में उसकी रचना को देखकर, अत: उस परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करो।

> चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
> आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
> स्वाहा ॥३॥ —यजु० ७। ४२

अर्थ—(देवानाम्, चित्र, अनीक, उदगात्) हे प्रभो ! जड़ व चेतन जो ३३ देव है, उनके भीतर जो कार्य करने की अद्भुत शक्ति है वह तेरी ही प्रदान की हुई है (वरुणस्य, मित्रस्य, अग्ने: चक्षु) जलों में, प्राण-वायु में, और अग्नि में, चक्षु अर्थात् जिससे वे निरन्तर दिन-रात कार्य करते हैं, वह शक्ति भी तेरी ओर से है। (आ प्रा) तू सब ओर से धारण किये हुए है इन (द्यावा पृथिवी, अन्तरिक्षम् सूर्य आदि लोकों को, भूमि लोकों को, और इन दोनों के बीच अन्तरिक्ष लोक को। (सूर्य, आत्मा, जगत:, च, तस्थुष:) सूर्य-रूपी आत्मा है, चेतन जगत् का, और जड़ जगत् का। (सु+आहा) यह कथन सही है।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा आकाशवत् विभु है, सूर्य की भांति प्रकाशमान है, और सूत्रात्मा वायु के सदृश सबके भीतर स्थित है। उसको प्राप्त करने के हेतु अपनी आत्माओं में योगाभ्यास द्वारा उसका साक्षात् करो।

> तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम
> शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
> स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥४॥ —यजु० ३६। २४

अर्थ—(तत् देवहित चक्षु:) वह परमात्मा, विद्वानों के हितों को देखने व दिखानेवाला है। (पुरतात्, शुक्रम्, उत्+चरत्) कल्प के पहले से वह शुद्धस्वरूप व बलवान् प्रभु उत्कृष्टता से, सब कालों में वर्तमान रहता है। (जीवेम, शत, शरद:; पश्येम, शत, शरद:; श्रृणुयाम, शत शरद:; प्रब्रवाम, शत शरद:; अदीना:, शतं शरद: स्याम) हम जीवें सौ शरद् ऋतु तक, हम देखें सौ शरद् ऋतु तक, हम सुनते रहें सौ शरद् ऋतु तक, वाक्-शक्ति बनी रहे सौ शरद् ऋतुभर, किसी के अधीन न रहें सौ शरद् ऋतुभर, (भूय:, च,

शतात्, शरदः) और, सौ शरद् ऋतुओं से भी अधिक ऐसे ही स्वस्थ बने रहे।

भावार्थ—हे मनुष्यो! शुद्ध आचार-विचार से अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरण को शुद्ध, स्वस्थ और स्वतन्त्र बनावो, तभी तो उस जगन्नियन्ता से प्रार्थना करने के अधिकारी होगे कि हम सौ वर्षों तक जीवित रहें। साथ ही दृष्टि, कान व बोलने की शक्ति भी सौ वर्षों तक बनी रहे और सौ वर्षों तक स्वतन्त्र रहें अर्थात् किसी के बन्धन में न हो जावें और सौ वर्षों से अधिक भी ऐसे ही बने रहें। जब तक मनुष्य-शरीर स्वस्थ, शुद्ध और स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक दीर्घजीवन का क्या लाभ?

अथ गायत्री मन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—(यजु० ३६।३; ऋ० ३।६२।१०; साम० उ० ६।३।१०)

अर्थ—'ओ३म्' परमात्मा का मुख्य नाम है। यह 'अ, उ, म्' मात्राओं के योग से बना है—(अ) अकार (उ) उकार (म्) मकार। अकार के तीन अर्थ हैं—(१) 'विराट्' जो अखिल विश्व का प्रकाश करने वाला है; (२) 'अग्नि' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र व्याप्त है; (३) 'विश्व' जो सम्पूर्ण जगत् में प्रवेश कर रहा है। उकार के भी तीन अर्थ हैं—(१) 'हिरण्यगर्भः' जिसके गर्भ में चमकीले पदार्थ स्वर्ण आदि व सूर्य-चन्द्रलोक हैं; (२) 'वायु' जो अनन्त बलवान और सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है; (३) 'तेजसः' जिसका अर्थ तेजस्वी और सब जगत् का प्रकाशक है। मकार के भी तीन अर्थ हैं—'ईश्वरः, आदित्यः, प्राज्ञः—(१) 'ईश्वर' का अर्थ सब जगत् का स्वामी, शासक और ऐश्वर्यशाली; (२) 'आदित्यः' का अर्थ अखण्ड, एकरस, नाशरहित; (३) 'प्राज्ञः' का अर्थ ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ।

तीन व्याहृतियाँ—भूः, भुवः, स्वः

'भूरिति वै प्राणः'—जो सबका प्राण अर्थात् जीने का हेतु है, इससे भगवान् का नाम 'भूः' है। 'भुवरित्यपानः' जो सब दुःखों का नष्टकर्ता और मुक्ति-प्रदाता है, इसी से उसका नाम 'भुवः' है। 'स्वरिति व्यानः' जो सबको उनके कर्मानुसार सुख देता है, इसी से उसका नाम स्वः है। (तत्) वह

(सवितु:) सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि का उत्पादक हैं, (वरेण्यं) ग्रहण करने योग्य, (भर्ग:) शुद्ध स्वरूप, अर्थात् सत्-चित् आनन्द है, (देवस्य) उसी ज्ञानस्वरूप देव को (धीमहि) हम धारण करें, (य:, न:, धिय:) जो हमारी बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा देवे जिससे हम शुभ विचारों के साथ शुभ कार्य करे।

गायत्री के जप के विषय में किन्हीं विद्वानों का मत है कि यह लाखों की संख्या में किया जाए। इतने लम्बे जाप के लिए यदि एक सहस्र जाप प्रतिदिन किया जावे, अर्थ सहित, क्योंकि बिना अर्थ के कोई लाभ नहीं होगा तो न्यून-से-न्यून तीन घंटा समय चाहिए। यह क्रिया केवल ब्राह्मण के लिए सहज है, आयु-भर करता रहे। परन्तु इसमें मन उकता भी सकता है। एक कठिनाई यह भी है कि न्यायदर्शन (१।१।१६) के अनुसार, "युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्" अर्थात मन एक समय में एक कार्य कर सकता है, चाहे गिनती गिना लो या जाप करा लो। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि प्रात: व साय संध्या-समय १०८ बार गायत्री का जाप होना चाहिए। गिनती तो इसमें भी करनी पड़ेगी। यह पौराणिक रीति है। माला में १०८ मनके होते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने 'सत्याथ प्रकाश' के तीसरे और एकादश समुल्लासों में माला के धारण का खंडन किया है। इस जाप को मन की एकाग्रता से अर्थ-सहित कुछ समय के लिए मन से बिना गिने प्रात. व साय किया जावे। आलस्य आने पर छोड़ दिया जावे।

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा
काममोक्षाणां सद्य: सिद्धिर्भवेन्न:। —पंचमहायज्ञविधि

अर्थ—हे ईश्वर, दया के कोष ! भगवन् ! (भवत्, कृपयाऽनेन) आपकी कृपा से (जपोपासनादि कर्मणा) जप, उपासना आदि कर्मों से (धर्मार्थ-काममोक्षणां) धर्म द्वारा अर्थ की प्राप्ति, फिर धर्म द्वारा उसका भोग करके मोक्ष की (सद्य:, सिद्धि:, भवेत्, न:) शीघ्र, सिद्धि करने वाले हम होवें।

नमस्कार-मन्त्र:

ओ३म् नम: शम्भवाय च मयोभवाय च नम। शङ्कराय च मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च। —यजु० १६।४१

अर्थ—नमस्ते शान्तिदायक और सुखकारी भगवान् को, नमस्ते मंगलमय

और प्रेरक परमात्मा को, नमस्ते कल्याणकारी और अत्यन्त कल्याणकारी परमात्मा को, अत: भगवान् को बारम्बार नम: (नमस्कार) हो।

भावार्थ—जैसे कोई व्यक्ति किसी मित्रस्नेही के पास जाता है और वार्तालाप के पश्चात् 'नमस्ते' कहकर विदाई लेता है, ऐसे ही भक्त भगवान् से मेल करके 'नमस्ते के' साथ आसन छोड़ता है।

॥ ओ३म् शम् ॥

—★—

अनमोल वचन

१. नदी की भाँति दानशीलता, सूर्य की भाँति उदारता, पृथिवी की भाँति सहनशीलता बनी रहे।

२. स्पष्ट बोलनेवाला कभी ठग नहीं होता; नि:स्पृह मनुष्य कभी अधिकारी नहीं होता; श्रृंगारप्रिय कभी अकामी नहीं होता; मूर्ख प्रिय बोलनेवाला नहीं होता।

३. जो आकर न जाए वह बुढ़ापा देखा, जो जाकर न आए वह जवानी देखी।

४. सदा गर्म रहें—गृहस्थी का चूल्हा, वानप्रस्थी का कुण्ड, ब्रह्मचारी का हृदय, सन्यासी के पैर।

५. यदि कोई तुम्हारे साथ उपकार करे तो उसे कभी न भूलो! यदि तुम किसी के साथ उपकार करो तो उसे स्मृति से निकाल दो!

६. श्रेष्ठ व्यक्ति कभी नहीं मरता। वह मनुष्यों की स्मृति में सदा बना रहता है।

७. शिष्टाचार उन्नति की कुंजी है।

८. धर्म भगवान् तक पहुंचने का मार्ग हैं।

९. सत्य एक विशाल वृक्ष है, उसका अन्त नहीं है।

१०. ऐसा सत्य भी न बोलो जो दूसरों को कड़वा लगे!

११. यदि मनुष्य ईमानदार रहे तो भगवान् भी उसका साथ देता है।

१२. आलस्य ही दरिद्रता का दूसरा नाम हैं।

१३. दुःखी की सहायता के लिए बढ़ाया हुआ एक हाथ, प्रार्थना में जुड़े हुए दोनों हाथों से अधिक सार्थक होता है।

१४. जन्म लेना उसी का सफल है जो अपनी जाति, देश, संस्कृति व वंश की उन्नति करे।

१५. निर्धन धनवान् से डरता है, निर्बल बलवान् से डरता है, मूर्ख विद्वान् से डरता है, किन्तु चरित्रवान् से ये तीनों डरते हैं।

१६. नीति के जानने वाले प्रशंसा करें या निन्दा, घर में धन आवे या जावे, मौत आये या कल्पान्तर में, परन्तु धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी विचलित नहीं होते।

१७. नीच मनुष्य साधारण बातचीत में कटु वचन बोलने लगता है, परन्तु श्रेष्ठ पुरुष वह है जो किसी के कटु वचन बोलने पर अपने मुख से कभी कठोर या अहितकर बात नहीं निकालता।

१८. उत्तम पुरुष वे हैं, जो अपना स्वार्थ त्यागकर दूसरों का कार्य करते हैं. मध्यम पुरुष वे हैं जो अपने स्वार्थ को साधते हुए भी दूसरे के कार्यों को सुधारते हैं, और जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का काम बिगाडते हैं, उनको मनुष्य के रूप में राक्षस समझना चाहिए, और जो बिना प्रयोजन के दूसरों के कार्य में हानि डालते हैं उनको क्या कहना चाहिये, यह हमारी समझ में नहीं आता।

१९. विधाता ने जो कुछ ललाट में लिख दिया है, उससे अधिक नहीं मिलता चाहे मरुस्थल पर जाओ या सुमेरु पर्वत पर। अतः हे मनुष्यों! सन्तोष धरो और किसी धनी से याचना न करो., क्योंकि घड़े को चाहे कुएं में डाला जाये या समुद्र में, सभी स्थलों पर बराबर ही जल निकलेगा—एक बूंद भी घट-बढ़ नहीं हो सकती।

२०. पशु व पुरुष में अन्तर केवल बुद्धि का है, परन्तु पुरुष बुद्धि जीवी होते हुए भी पशु का बडा भाई बन जाता है., पशु अपने सजातीय पशु को नहीं मारता, जबकि पुरुष अपने सजातीय को मारने में आनन्द लेता है। पशु दस इकट्ठे रह सकते हैं पुरुष दो भी इकट्ठे नहीं रह सकते।

२१. पशु में स्वभाव हैं, पुरुष में चुनाव है., पुरुष अगवा बनता है, पशु पीछे लगता है।

२२. स्वार्थ सारे अपराधों और पापों की जड़ है, और स्वार्थ की जड़ अज्ञान है।

२३. मनुष्य दरिद्री क्यों ?—स्वार्थवश।

२४. नम्रता का कवच पहन लेने पर कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता, जैसे कपास की रुई तलवार से काटे भी नहीं कटती।

२५. अपनी इच्छा को रानी नहीं, वरन् उसे दासी बनाए रक्खो, ताकि पाप से बचे रहो।

२६. जीवन की फिलासफी यह है कि जो व्यक्ति अपने सुख का जितना त्याग करता है, वह त्याग किये सुख से सौ गुणा पाता है। सुख का कारण सन्तोष है, दुःख का कारण असन्तोष है। स्वार्थ में गुण ऐसे लुप्त हो जाते हैं जैसे समुद्र में नद व नदियां।

२७. शान्ति के तुल्य कोई तप नहीं; सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं, तृष्णा से बडी कोई व्याधि नहीं; दया के समान कोई धर्म नही; अभिमान से बड़ा कोई अधर्म नहीं।

२८. विद्वान् के सामने राजा की कोई तुलना नहीं, क्योंकि राजा अपने देश में ही पूजा जाता है जबकि विद्वान् की सवत्र पूजा होती है।

२६. सन्ध्या करने वाले का शुद्ध उच्चारण होना और मन्त्रों के अर्थों का जानना अनिवार्य है। इसी तरह बिना प्राणायाम के सन्ध्या अधूरी रहती है।

३०. योग के आठ अंग हैं—पहला यम, जो पाँच प्रकार का है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह; दूसरा नियम, यह भी पाँच प्रकार का हैं—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान ये पहले दो अंग जब तक सही नहीं होंगे, व्यक्ति आगे उन्नति नहीं कर सकता। ये भिन्न-भिन्न मतों के माननेवालों के लिए अनिवार्य है।

३१. जो व्यक्ति अपने लिए ही पकाता है और अकेला खाता हैं, वह पाप का उपभोग करता है।

३२. जिस गृहस्थ के यहाँ से अतिथि निराश लौट जाता है, उसके शेष चारों यज्ञ निष्फल होते हैं।

३३. शास्त्रों में धन की तीन गतियां बताई हैं—दान, भोग और नाश। जो धनी किसी शुभ कार्य में दान नहीं देता और न स्वयं भोगता है, ऐसे व्यक्ति का धन नाश को प्राप्त होता है।

३४. जिस घर में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सन्तुष्ट रहते हैं, उ
घर में सदा आनन्द रहता है।

३५. जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है, उस घर में देवताओं क
वास होता है। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ की सब क्रियायें निष्फल होत
हैं।

३६. निर्बलता दुःख का हेतु है; संयम से रहनेवाले से निर्बलता दू
भागती है।

३७. श्रम प्रत्येक वस्तु पर विजय प्राप्त करता है।

३८. जिह्वा का आघात तलवार से कठोर होता हैं।

३९. जो विद्याहीन है वह अति सुन्दर, स्वस्थ और सम्पन्न होने पर भी
गन्धहीन पुष्प की भाँति है।

४०. बदनाम होने से गुमनाम रहना अच्छा है।

४१. सच्चा मित्र वह हैं जो दर्पण के समान तुम्हारे दोषों को तुम्हें
दिखा देता है! जो तुम्हारे अवगुणों को गुण बतलाता है, वह तो खुशामदी
है, मित्र नहीं।

४२. सबसे बड़ा अमीर वह है जो गरीबों का दुःख दूर करता है। सबसे
बड़ा फकीर वह है जो अपने गुजारे के लिए अमीरों का मुँह नहीं देखता।

४३. ऐश्वर्य, वीर्य, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, इन ६ का नाम
भग है अर्थात् इनको प्राप्त करने वाला पुरुष 'भगवान्' और स्त्री 'भगवती'
कहलाती है।

४४. उत्पत्ति, विनाश, गति, अगति, विद्या, अविद्या, इन ६ को जानने
वाला पुरुष 'भगवन्' और स्त्री 'भगवती' कहलाती है।

४५. स्वर्गवासी के शरीर में चार चिह्न रहते हैं अर्थात् दान का
स्वभाव, मधुर-भाषण, देव-पूजा, ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करना।

४६. अपनी स्त्री, धन व भोजन पर सन्तोष करना चाहिए; परन्तु
पढ़ना, दान और जाप इन तीनों पर कभी सन्तोष न करें।

४७. जैसा खावे अन्न वैसा बने मन। दीपक अन्धकार को खाता है और
काजल को उत्पन्न करता है।

४८. कथनी से करनी अच्छी, जिसका प्रभाव पड़ता है।

४९. आस्तिकता पुण्य है; नास्तिकता पाप है।

५०. परमात्मा में शान्ति है; प्रकृति में अशान्ति है।

५१. कम खाना, गम खाना, कसर खाना, इनसे आरम्भ में कष्ट प्रतीत होता है, परन्तु अन्त में शान्तिदायक है।

५२. सत्य, सेवा, सादगी, सन्तोष, सदाचार, स्वाध्याय एवं समानता, ये सात सुमन हैं।

५३. सेवा करना जीवन कमाना है; सेवा लेना जीवन बेचना है।

५४. दया बिन सन्त कसाई।

५५. मनुष्य पुरुषार्थ से शिव बन जाता है और आलस्य से शव।

५६. खाया हुआ अन्न अपना नहीं होता, परन्तु पचाया हुआ अन्न अपना होता है।

५७. कमाया हुआ धन अपना नहीं होता, पर परोपकार में लगाया हुआ धन अपना होता है।

५८. भोजन और भाषण सात्विक और मृदु होने चाहिए।

५९. जैसे सूर्य में तेज और चन्द्रमा में शीतलता बनी रहती है, वैसे ही वीर में तेजस्विता और सन्त में शीतलता निवास करती हैं।

६०. फूल को मत तोडो, उसके सौन्दर्य और सुगन्ध से प्रसन्नता प्राप्त करो।

६१. दूसरे के प्राण की रक्षा से बढकर कोई धर्म नहीं है।

६२. मनुष्य कर्म से बंधता है और ज्ञान से छूटता है।

६३. क्रोध से आयु घटती है और शरीर सूख जाता है।

६४. स्त्री, पुत्र, मित्र और भृत्य बड़े भाग से अच्छे मिलते हैं।

६५. बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं।

६६. ईश्वर और मृत्यु को जो व्यक्ति सदा सामने उपस्थित देखते हैं, पापों से बचे रहते हैं।

६७. चिता जलाती है मुर्दे को चिन्ता जलाती है जीवित को मरे हुये को बैठकर रोता है, रोटी को खड़े होकर रोता है।

६८. कोयले में हीरा, सीप में मोती, कीचड़ में कमल, दुर्जनों में सज्जन, हाथी में गजमुक्ता, विषधर में मणी बनों में चंदन मनुष्यों में साधु कहीं कहीं देखने को मिलते हैं।

६९. सूर्य के प्रकाश से कमल खिलता है तारागणों के प्रकाश से नहीं, विशेष व्यक्ति ही संसार को जागृत कर सकता है, साधारण पुरुष नहीं।

७०. धनी होते हुए जिनमें अभिमान नहीं, युवा होते हुए जिनमें उन्माद नहीं, सर्व शक्ति सम्पन्न होते हुए जो प्रमादी नहीं, संसार उनकी महिमा का गान करता है।

७१. जो क्षण में रुष्ट हो क्षण में तुष्ट हो ऐसे चंचल व्यक्ति को अधिकारी नहीं बनाना चाहिये।

७२. माता, पिता, आचार्यों के कृतों का बदला नहीं चुकाया जा सकता।

७३. विश्वासघात और झूठ व कृतघ्नता सबसे बड़े पाप हैं।

७४. मित्र वही है जो विपत्ति के समय साथ न छोड़ें।

७५. सब प्राणियों का हित करना ही परम धर्म है।

७६. दान बड़ी उदारता है. यह दाता को हर कठिनाई से बचाता है। दानी की सब जगह प्रशंसा होती है।

७७ स्वयं पतित व्यक्ति, दूसरे पवित्र मनुष्यों को अपनी ही कसौटी पर कर कसकर उनको अपने तुल्य समझा करता हैं।

७८. मन में ही जन्म जन्मांतरों का संचित ज्ञान तथा वासनायें बनी रहती हैं। शुद्ध मन में अभौतिक और अशुद्ध में भौतिक भाव भरे रहते हैं।

७९. यह शरीरस्थ आत्मा रथी है, शरीर रथ हैं, बुद्धि सारथी है, मन लगाम की रस्सी, इन्द्रियाँ रथ के घोड़े, विषय इसके भोग हैं। आत्मा अन्तःकरण युक्त ही इस शरीर रूपी रथ को चलाता हैं।

८०. दिन में प्रत्येक कार्य इस ढंग से करो जिस से रात्रि में शान्ति की नींद सोओ।

८१ जो व्यक्ति निकम्मा रहता हैं वही बुराइयों की ओर झुकता हैं।

८२ वही व्यक्ति बलवान होता हैं जो अपने ऊपर अधिकार रखता हैं।

८३. जीवन दुःखमय हैं. यह विचार भ्रान्त हैं, संसार में दुःख की अपेक्षा सुख अधिक हैं, जो संसार को सुखी बसने का यत्न करतां हैं, वही अधिक सुखी होता हैं।

८४. वही लेखक प्रिय व जरूरी होता हैं जो अन्यों पर अपनी आत्मा उडेल देता है।

८५. सत्पुरुषों का योग्य हैं कि मुख के सामने दूसरों का दोष कहना और अपना दोष सुनना। परोक्ष में दूसरों के गुण सदा करना, परन्तु दुष्टों की यही रीति हैं कि समक्ष में गुण कहना और परोक्ष में दोष को कहना।

८६. वह माता शत्रु हैं और पिता बैरी हैं कि जिसने अपने बालक को शिक्षित नहीं किया, क्योंकि अनपढ़ व्यक्ति सभा के मध्य में ऐसे अशोभित होता हैं जैसे हसों के बीच में बगुला।

८७. ब्राह्मण का बल विद्या हैं, राजा का बल सेना, वैश्य का बल धन और शूद्रों का बल सेवा हैं।

८८. आचार कुल को, बोली देश को आदर प्रीति को और शरीर आहार को बतला देता हैं।

८९. अग्नि से जलते हुए एक ही सूखे वृक्ष से वह सब वन जल जाता हैं, वैसे ही कुपुत्र से कूल।

९०. कोयल का रूप स्वर, स्त्री का रूप पतिव्रत, कुरूपों का रूप विद्या विद्या और तपस्वियों का रूप क्षमा हैं।

९१. एक हो सन्दल के वृक्ष से सारा वन सुवासित हो जाता हैं, वैसे ही सुपुत्र से कुल।

९२. राज्य का न रहना अच्छा, परन्तु दुष्ट राजा का होना अच्छा नहीं। मित्र का होना अच्छा पर मूर्ख का मित्र होना अच्छा नहीं। शिष्य का न होना अच्छा, पर कुशिष्य को शिष्य बनाना अच्छा नहीं। भार्या का न होना अच्छा, पर मूर्ख भार्या का होना अच्छा नही।

९३. सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त हुए मनुष्य को जो शान्ति सुख होता हैं, वह लोभ से धन के पीछे दौडने वाले को कहां?

९४. अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ व स्त्री को कभी पैर से न छूना चाहिये।

९५. अत्यन्त क्रोध, कटु वचन, दारिद्रय, आपस में बैर भाव, नीच का संग, कुल हीन की सेवा यह चिह्न नरकवासियों के देह में होते हैं।

९६. वचन की शुद्धि, मन की पवित्रता, इन्द्रियो का संयम, जीवों पर दया यह परोपकारियों के चिन्ह हैं।

९७ कौआ क्या नहीं खाता, कवि क्या नहीं कहता, शराबी क्या नहीं बकता?

९८. जिन व्यक्तियों में न विद्या है, न तप हैं, न दान, न शील, न गुण न धर्म हैं, वह संसार में भार रूप होकर, मनुष्य रूप में पशु बने फिरते हैं।

९९. जिसको बुद्धि हैं, उसी को बल हैं। निर्बुद्धि को बल कहां ?

१००. उदारता, प्रिय बोलना, वीरता और उचित का ज्ञान भाग्य से होते है।

१०१. जिस घर में आज्ञाकारी पुत्र पुत्रियाँ, मधुर भाषिणी स्त्री, सच्चे सेवक अतिथियों की सेवा आदि पाँचों यज्ञ होते हैं वह गृहस्थ धन्य हैं।

१०२. दान से रहित हाथ, विद्या के विरोधी कान, साधु दर्शन से शून्य नेत्र, न तीर्थ यात्रा में कभी पांव रखा अन्याय के धन से पेट भरा और गर्व से सिर ऊंचा रखा, ऐसे निन्दनीय शरीर का छूटना अच्छा हैं।

१०३ जैसे हजारों गौओं में बछड़ा अपनी ही माता को पकड़ लेता है ऐसे ही किया हुआ कर्म अपने कर्ता को पकड़ लेता हैं।

१०४. किया हुआ कर्म शुभाशुभ बिला भोगे नष्ट नहीं होता चाहे कितने ही जीवन व्यतीत हो जायें।

१०५ धन, मित्र, स्त्री, पृथिवी, पुत्र ये सब बार बार मिलते रहते हैं, पर मनुष्य देह बिला धर्म कर्म के बार बार नहीं मिलता।

१०६ धर्म, धन, अन्न, साधु वचन व औषधि इन सब को भली भांति ग्रहण करना चाहिये, विरुद्ध करने वाला जीवित ही नहीं रहता।

१०७. दुष्ट का संग छोड, सज्जन का साथ पकड सदा पुण्य कर्म कर और इस अनित्य मनुष्य जन्म में नित्य भगवान का जाप कर।

१०८. मलिन शरीर वाले को, बहुत खाने वाले को, कटु भाषी को सूर्य के उदय व अस्त काल में सोने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती हैं।

१०९. ज्ञान अनन्त हैं, काल अल्प हैं, विघ्न अधिक हैं अतः सार को प्राप्त करना चाहिये, जैसे हंस जल मिश्रित दूध से जल को छोड़ देता हैं, और दूध को ले लेता हैं।

११०. काटा हुआ चन्दन का वृक्ष गंध को नहीं छोड़ता, कोल्हु में पेरी हुई ईख मधुरता को नहीं छोड़ती, कुलीन दरिद्र भी सुशीलता आदि गुणों को नहीं छोड़ता।

१११. प्राणी गुणों से उत्तमता को पाते हैं, ऊंचे आसन पर बैठकर नहीं जैसे छत पर बैठा कौआ गरुड नहीं हो सकता. अत: सभा में व्यक्ति को एसे आसन पर आसान पर आसीन होना चाहिये जहां से उठाया न जा सके।

११२. जिसके गुणों का दूसरे व्यक्ति बखान करें; वही गुणवान कहलाता हैं। जो अपनी प्रशंसा स्वयं करे वह लधुतर को प्राप्त हाता हैं।

११३. गुणों को पाकर ही गुण सुन्दरता पाते हें, जंसें सोना मे जड़ा हुआ रत्न अत्यन्त सुन्दर देख पडता हैं।

११४. और दान तो सब नष्ट हो जाते हें, परन्तु सत्पात्र को दिया हुआ दान और सब जीवों को अभय दान कभी नष्ट नहीं होते।

११५. जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागता हैं, उनकी विपत्ति नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पद-पद पर सम्पत्ति प्राप्त होती हैं।

११६. सांप के दांत में विष रहता है, मक्खी के सिर मे विष रहता है, बिच्छू की पूंछ मे विष रहता है, पर दुर्जन के सब अगों मे विष भरा रहता है।

११७. मधुर वचन के बोलने सें सब जीव सन्तुष्ट होते है इस कारण उसी का बोलना योग्य है। वचन मे क्या दरिद्रता ?

११८. जैसें खेत बिना बीज बोये फल नहीं दे सकता, उसी प्रकार प्रारब्ध भी पुरुषार्थ के बिना सिद्ध नहीं होता, अत: इसी जगत में उद्योगहीन मनुष्य कभी फूलता फलता नहीं दिखाई देता।

११९. श्रोत्र श्रुति के सुनने से शोभते हैं, कुन्डलों से नहीं हाथ दान से सुशोभित हौते हैं ,कगन पहनने से नहीं, शरीर परोपकार से सुगंधित होता है, चन्दन लगाने से नहीं; मन आदर से तृप्त होता है भोजन से नहीं, मुक्ति ज्ञान से मिलती है छाप व तिलक से नहीं।

१२०. यदि लोभ है तो दूसरे दोष से क्या ? यदि चुगली है तो और पापों से क्या ? यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या ?

१२१. यदि सत्य हैं तो तप से क्या ? यदि मन स्वच्छ हैं तो तीर्थ से क्या ? यदि सज्जनता है तो, और गुणों से क्या ? यदि महिमा हे तो, भूषण से क्या ? यदि विद्या हे तो धन से क्या ?

१२२. उपासना का अर्थ है प्रभु के साथ बैठना। अतः जीव तीन अवस्थाओं में ब्रह्म के समीप बैठना है अर्थात् सुषुप्ति, समाधि और मुक्ति में। इन के भेद इस प्रकार हैं कि समाधि में जीव शरीर सहित और ज्ञान सहित होकर प्रभु की समीप्ता के आनन्द को भोगता हैं। मुक्ति में शरीर रहित पर ज्ञान सहित होकर प्रभु की समीप्ता के आनन्द को भोगना। सुषुप्ति में शरीर सहित पर ज्ञान रहित होकर प्रभु की समीप्ता के आनन्द को भोगता है सुषुप्ति तपोगुणी होती है पर मन निर्विषय रहता हैं।

(वेदान्त दर्शन)

१२३. विभु और व्यापक का भेद, विभु प्रत्येक मूर्तिमान वस्तु से संयोग होने का नाम है जैसे आकाश. परमाणुओं के भीतर आकाश नहीं होता सर्वव्यापक सबके बाहर भीतर रहता है जैसे प्रभु (वेदान्त दर्शन)

१२४. जैसे स्वर्ण की चार प्रकार से परीक्षा की जाती है अर्थात घिसने से, काटने से, तपाने से, और पीटने से, इसी प्रकार मनुष्यों की भी चार प्रकार से परीक्षा की जाती है, उनके त्याग से, शील से, गुणों से, व धर्म पालने से।

१२५. अच्छे विद्यार्थी के पांच लक्षण अर्थात काक चेष्टा, बको ध्यानम्, स्वान निद्रा, जितेन्द्रिय और अल्प आहार।

१२६. जिन व्यक्ति के भीतर न विद्या है न तप है न दान है न शील हैं न कोई गुण हैं न धर्म हैं वह इस मर्त्य लोक में पुरुष रूप में पशु होकर भूमि पर भार बने फिरते हैं।

१२७ ज्ञान प्राप्ति के चार साधन हैं, श्रद्धा, तत्परता, इन्द्रिय सयम और योग संसिद्धि।

१२८. बुद्धि की बिलक्षणता पशु पक्षियों में भी होती है। जैसे पशुओं में बन्धू अपूर्व, बेल, हस्ती, ऊट व कुना, यह एक बार जिस मार्ग से चले गये उसको भूलते नहीं। पक्षियों में कबूतर, तोता, मैंना आदि।

१२९. ब्रह्मचर्य के तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य इन्द्रिय दमन से विद्यार्थियो की इच्छा करें।

१३०. स्त्री श्रेष्ठ पुत्रो की जन्मदात्री, आपत्तियो की सहनशीलता, धन की रक्षिका अर्थात अच्छी कोशिका है।

१३१. हे राजन! मीठी बात करने वाले चापलूस इस सृष्ठि में बहुत मिलते है पर कडवी परन्तु हितकर बात के कहने व सुनने वाले दुलर्भ है।

१३२. कामी पुरुष के भीतर न धर्म, न भय और न लज्जा होती है।

१३३. सूर्य आग्नेचछ नामों से प्रसिद्ध है :—(१) भूतल पर साधारण अनल (२) जल में बड़वा नल (३) वायु में प्राणपानल (४) तेज में प्रभा नल (५) सब प्राणियों म वैश्वानर (६) विद्युत रूप से ब्राह्मांड मे व्याप्त है।

१३४. धर्म के तीन तने हैं :— यज्ञ, तप व दान, यज्ञ का अर्थ है देव पूजा' सगति करण व स्वर्ग का दान जैसे कहा है स्वर्ग कामा: यजेत।

१३५. शराब के जोड़ीदार— अभक्ष्य, व्यभिचार, रोग, दवा, डाक्टर, मृत्यु, सांपा‍ं अत्येवृ।

१३६. एक बार विद्या ब्राह्मण से बोली, मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारे कल्याण की निधि हूँ। मुझे घमंडी, चरित्र हीन, अतपस्वी, अधर्मात्मा को नहीं देना क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की विद्या सर्वथा प्रभावहीन होती हैं। ऐसा कहा गया है—विद्या धर्मेण शोभते।

१३७. आर्यों के पंचशील:— प्रतिज्ञा, प्रार्थनी, पुरुषार्थ पवित्रमा और प्रचार।

१३८. आर्यों का साम्यवाद—सबको समान अवसर देना, छोटाई बड़ाई न गिनना, योग्यतानुसार समान अधिकार देना।

१३९ हिन्दी मास का आरम्भ प्रतिपक्ष से होता हैं और अमावस्या तक रहता हैं यह मास का आधा भाग इक्कम से तथा पूर्णिमा पर समाप्त होता हैं। इसको सुदी व शुक्र पक्ष कहते हैं।

१४०. सेवक सुख चहे, मान भिखारी।
व्यसनो धन, शुभगति व्यभिचारी॥

लोभी जस चहे, चार गुमानी। नभ दुहि दुध चहत ए प्राणी॥

चार—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

१४२. मनुष्य दरिद्री क्यों ? स्वार्थ वश। त्याग यादान कोई व्योपार नहीं कि इतना दान करुंगा, यज्ञ करा दूंगा, सत्यनारायण की कथा कुहावूंगा तो मेरी वांछा पूरी होगी।

१४३. दानी की तुलना एक फल वाले वृक्ष से दी गई है, जिसकी डाली पक्के फल को छोड़ते समय नीचे झुक जाती है। ऐसे ही दानी अपनी ग्रीवा को दान न देते समय नीचे कर लेता है, जिससे अहंकार की भावना न हो।

१४४. खुदा के कुर्ब (समीप्ता) का नाम ही कुर्बानी है, न कि पशु पक्षी को कुर्बानी (हिंसा) करना।

१४५. श्रेय: कल्याण सम्बन्धी मार्ग अर्थात ज्ञान। श्रेय: प्राकृतिक मार्ग है अर्थात कर्म या अज्ञान। जैसे प्रकाश की ओर मुख करने से व्यक्ति की छाया पीठ की ओर हो जाती है। तथा प्रकाश स्वरूप परमात्मा की ओर मुख से अमृत और विमुख होने से मृत्यु को प्राप्त होता है।

१४६. प्राण का त्यागना मान भंग होने से श्रेष्ठ है। प्राण त्यागते समय क्षण भर दुख होता है। मान भंग होने से प्रतिक्षण दुख होता है।

१४७. आदमी पैसे से हो नकशों नगीन है। पैसा न हो तो कौड़ी के तीन-तीन हैं। परन्तु अर्थ की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। अर्थ से अन्न प्राप्त किया जाता हैं। शुद्ध अन्न से अन्त:करण की शुद्ध होती हैं, स्मृति निश्चल होती है। तब हृदय की सब गांठ खुल जाती है। और व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी हो जाता है अत: कपट छल से कमाये धन से व्यक्ति इसी जीवन में अधोगति को प्राप्त होता है।

१४८. पशु-पक्षी इन्द्रियों के एक-एक विषय में आसक्त होकर बन्धन में फ़सता है। पर पुरुष तो इन्द्रियों के सब विषयों का स्वाद लेता है। तेरा कैसे उद्धार होगा।

१४९. जो अज्ञ है वह करोवृद्ध होते हुए भी बालक के समान हैं। पर मंत्रायण देने वाला बालक भी पिता के तुल्य सम्मानित होता हैं।

१५०. परा विद्या का सम्बन्ध आत्मा के साथ रहता है। अपरा विद्या अन्त:करण से प्राप्त की जाती है।

१५१. मनुष्य दो प्रकार के योगी और भोगी, अपूर्ण से पूर्ण की ओर जाना योग। दूर्ण से अपूर्ण की ओर लौटना भोग। योग सरल है, भोग जटिल है।

१५२. समय मूल्यवान या अर्थ ? समय मूल्यवान है क्योंकि बीता हुआ समय फिरे हाथ नहीं आता। परन्तु खोया हुआ धन फिर मिल जाता है।

१५३. वृद्ध कौन ? विषयासक्त। विष का भी विष क्या ? इन्द्रिय विषय

१५४. हीनता का मूल याचना। याचना से सब कुछ मिल जाता है, पर सिर नीचा हो जाता है।

१५५. बन्धन का हेतु ? मनुष्य की एषणायें—वित्त, पुत्र व लोक षणा।

१५६. जो गल्ती ही नहीं, करता उसे भगवान कहते हैं।
जो गल्ती करके शरमाए उसे श्रीमान कहते हैं।
जो गल्ती करके दोहराये उसे हैवान कहते हैं।
जो गल्ती करके अड जाए उसे शैतान कहते हैं।
डुबो दे जो जहाजों को उसे तूफान कहते हैं।
जो तूफानों से टक्कर ले उसे मरदान कहते हैं।

१५७. मन की शान्ति के साधन—एकान्तवास, मौन साधन। मन एव मनुष्याणां कारण बंध मोक्षप्ते।

१५८. काम नष्ट करता ध्यान को, क्रोध नष्ट करता ज्ञान को, लोभ नष्ट करता ईमान को, मोह नष्ट करे औसान को, अहंकार नष्ट करता प्राण को।

१५९. मन को विषयों से लुभाना नहीं अच्छा, घी से अग्नि को बुझाना नहीं अच्छा।

१६०. प्रारब्ध से बडा कुछ नहीं।
एक सीप के दो मोती कीमत जुदा-जुदा।
इक घिस रहा खरल में इक ताज में जडा।
एक बाप के दो बेटे किस्मत जुदा जुदा।
इक शहंशाह जहां का इक फिर रहा जुदा।
जैसा किसी का हो अम्ल वैसा ही पाता हैं वह फल।
दुष्टों का होता दलन शिष्टों का होता दुखहनन।

१६१. परमात्मा के मार्ग में छ सत्यः—(१) सत्य अर्थ, सत्य आहार, सत्य विचार, सत्य आचार, सत्य प्रचार सत्य व्यवहार।

१६२. कहते हैं हंस नाम का पक्षी मान सरोवर पर रहता है। यह नीर क्षीर का विवेक करता है और मोती चुगता है। मान सरोवर पहाड़ के ऊपर एक बड़ी झील है, वहां पर जो व्यक्ति गये उन्होंने हंस की खोज की, परन्तु हंस नामका पक्षी वहां नहीं मिला। यह हंस कोई पक्षी नहीं हैं। परन्तु यह जीवात्मा हैं वेदों में ऐसा कहा गया हैं। मानस सरोवर जो व्यक्ति के शरीर के भीतर हैं उसमें यह आत्मा रूपी हंस निवास करता हैं। यह सत्या सत्य विवेकी हैं। अर्थात नीर क्षीर विवेकी हैं। यह हंस मोती चुगता हैं, अर्थात मुक्ति का स्वाद लेता हैं। इसको सच्चे अर्थो में हंस बनाओ।

१६३. ओ३म् परमात्मा का मुख नाम है। परमात्मा के गुण वाची और भी सहस्रों नाम है पर यह ओ३म् नाम सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान है।

सूक्ष्म इस हेतु से कि ओ३म् में कुल ढ़ाई अक्षर हैं-अ, उ, म्। परमात्मा के और नामों में इससे ज्यादा अक्षर हैं।

महान इस दृष्टि से कि ओ३म नाम के १९ अर्थ हैं। परमात्मा के दूसरे नामों के इतने अर्थ नहीं है।

इसके अतिरिक्त ओ३म् नामी भगवान सदा एक रस रहने वाला होने से इसमें फेर बदल नहीं होता अर्थात एक वचन में हो या बहुवचन में, first person (मैं) second person (तुम या third person (उस) मे हो अर्थात इसमें मैं तू की भावना नहीं।

१६४. (अ) ज्ञान घटे नर मूढ की सगत
ध्यान घटे चित्त के भरमाये
रूप घटे विषय भोगन से
अरु बुद्धि घटे बहु भोजन खाये;

(ब) स्वभिमान घटे ठग चोर के सग में
मान घटे नित पर घर जाये
पाप घटे कछु पुण्य किये
अरु रोग घटे कछु औषध खाये।

(स) नेह घटे कछु मांगन से
अरु नीर घटे ऋतु गरिशम आये
काम प्रसग ते जोर घटे
यम त्रास घटे प्रभु के गुण गाये।

मुरारीलाल आर्य
रुड़की

१६५. अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियां मनुष्य को पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप में ही मिलती हैं। अतः मनुष्य को विवेकपूर्वक उनका सदोपयोग करना चाहिये।

१६६. प्रतिकूल परिस्थिति पूर्वकृत पापकर्मों का फल भुगताकर मनुष्य को शुद्ध करती हैं।

१६७. राग द्वेष अपने व पराये के भाव से होते हैं। अपना तो केवल प्रभु है। शेष सब पराये ही हैं, यह निश्चय होने पर राग द्वेष नष्ट हो जाते हैं।

१६८. सच तो यह हैं कि मनुष्य परिस्थितियों का दास हैं, इनके ही ही हेर फेर में वह आशा व निराशा में भूलता हैं।

१६९. जिसका मन इच्छा रहित परमात्मा में रहता हैं वह प्रभु उसकी संभाल रखते हैं हैं।

१७०. जगत की प्रभुता क्षण भंगर हैं जैसे स्वप्न में मिला हुआ पराया धन, जो जागने पर नहीं रहता।

१७१. मान बड़ाई अथवा प्रतिष्ठा की इच्छा मृत्यु का आह्वान करना हैं। परमार्थ का इच्छा अमृत का स्रोत हैं।

१७१. जैसे एक ही अग्नि भिन्न भिन्न काठों में प्रवेश करके अनेक प्रकार के रूप वाला हो जाता है। इसी प्रकार एक ही आत्मा भिन्न भिन्न भूतों में भिन्न भिन्न आकार का हो जाता हैं।

१७३. राग के समान संसार में कोई दुख नहीं और त्याग के समान कोई सुख नहीं।

१७४. मनुष्य के जीवन को काटने वाली तलवारे—अत्यन्त अभिमान, बहुत बकवास, त्याग रहित, क्रोध, मित्र द्रोह, कृतघ्न, अपनी ही उदर पूर्ति।

१७५. संसारिक सुख दुख, कामना, भय, लोभ सब अनित्य है। इनके हेतु धर्म का त्याग न करे क्योंकि धर्म नित्य हैं।

१७६. अपनी शक्ति के अनुसार सदा अन्न दान करना, सहन शीलता, सरलता, कोमलता यथा योग्य दूसरो का सत्कार महान पुण्य हैं।

१७७. अल्प भोगी को ६ गुणों की प्राप्ति होती हैं। स्वस्थ, दीर्घायु, बल यश व सुख।

१७८. वेदों का फल अग्निहोत्र, धन का दान, स्त्री का सन्तान, अध्ययन का फल शील।

१७९. भूमि, कीर्ति, यश, लक्ष्मी यह सब सत्यवादी पुरुष की अभिलाषा करती है। अतः मनुष्यों को सदा सत्य का ही सेवन करना चाहिये।

१८०. मनुष्य पहले पाप का संकल्प करता है, तदन्तर काम अर्थात् शरीर से व्यक्तियों का अनिष्ट करके पाप कर्म करता है और जब पकड़ में

आता है तो जिह्वा से झूठ बोलता है। इस प्रकार पाप मानसिक, शारीरिक तथा वांचिक रूप से तीन प्रकार का होता है।

१८१. सत्य, धर्माचरण, पराक्रम, प्राणी मात्र पर दया, प्रिय कथन, दिव्य गुणो विद्वत्ता तथा अतिथि सत्कार, यह शुभ कर्म स्वर्ग की प्राप्ति के साधन व मार्ग कहे गये हैं।

१८२. सदाचारी, सज्जन, सत्संगी, सत्वक्ता, दयावान, दानी, धर्मात्मा, अहिंसक व्यक्ति ससार में महामुनि और पूजनीय समझे जाते हैं।

१८३. केवलांघो भवति केवलादी। अर्थात अकेला खाने वाला व्यक्ति पाप खाता हैं। अतः सब को खिलाकर या पूछ कर भोग करना चाहिये।

१८४. जैसे समय आने पर ही धान्य पकते हैं, वैसे ही दुष्ट कर्मी को उसके किये दुष्टकर्मों का फल शीघ्र नहीं दिखाई देता, समय आने पर बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है।

१८५. व्यक्ति समुद्र के समान गम्भीर्ता धारण करे और मन में जल के समान शीतलता बनी रहे।

१८६. ईश्वर का प्रकाश सबके हृदय में समान होने पर भी साधु व्यक्ति के हृदय में अधिक प्रकाशित होता हैं, क्योंकि साधु के मन का दर्पण मैला नहीं होता हैं।

१८७. जैसे अध्यापक अपने शिष्य के पठन पाठन के परिणाम को जान लेता हैं, ऐसे ही परमात्मा भी जीवों के आगामी कार्यों को जान लेता हैं।

१८८. फूलों की सुगध जिधर वायू हो उधर ही जाती हैं, अन्य दिशाओं में नहीं जाती, परन्तु धर्म से सम्पन्न मनुष्यों की सुगन्ध सभी ओर पहुंचती है।

१८९. निबल बलवान से डरता रहे, निर्धन धनवान से डरता रहें, मूर्ख विद्वान से डरता रहे परन्तु चरित्रवान से यह तीनों डरते रहे।

१९०. खा जाता है उधार मित्रता को, मांगना मान को, अधिक मुलायम सम्मान को, घमन्ड ज्ञान को, चिन्ता आयु को, भ्रष्टाचार न्याय को, प्रेम शत्रुता को, झूठ शक्ति को, मदिरा धन व जीवन को, न्याय अत्याचार को, अच्छाई बुराई को, विद्या अज्ञान को, प्रायश्चित पाप को, दान विपत्तियों को।

१९१. कुआं व बावरी में नर अगर गिरता हो गिर जाए। निगाहों में मगर लोगों की गिरना ही नहीं अच्छा।

१९२. स्वर्गवासी के शरीर में चार चिह्न रहते हैं, दान का स्वभाव, मधुर भाषण, देवपूजा, ब्रह्म ज्ञानी को तृप्त करना।

१९३. अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनों पर संतोष करना चाहिये परन्तु पढ़ना, जप व दान इन तीनों पर कभी सन्तोष न करे।

१९४. जैसा अन्न वैसा मन. दीपक अन्धकार को खाता हैं, और काजल को उत्पन्न करता है। मनुष्य भी जैसा अन्न खाएगा वैसे ही उसकी प्रकृति और सन्तान उत्पन्न होगी।

१९५. जीव मनुष्य के सोते समय और मृत्यु समय उसके कण्ठ पर आ जाता है। कर्ज, फर्ज अथवा मर्ज को कभी मत भूलो।

१९६. कमान से निकला हुआ बाण, मुख से निकली हुई बात और देह से निकले हुए प्राण फिर वापस नहीं आते। अतः सब कार्य विचार पूर्वक करो।

१९७. जो गुरु जनों की सेवा, नित्य आदर सत्कार करता है, उनके बल, आयु, विद्या व यश की निरन्तर वृद्धि होती है।

१९८. मनुष्य को कर्म करने में सदा अपनी शक्ति, देश काल व शुभाशुभ परिणाम का विचार करना चाहिये जिससे अन्त में पछताना ना पड़े।

१९९. जैसे घोडों के बिना रथ और सारथि के बिना घोड़े, इसी प्रकार विद्या के बिना मनुष्य का तपस्वी जीवन और तपस्वी जीवन रहित पुरुष की विद्या व्यर्थ हैं।

२००. कठोर, कर्कश व अश्लील वाणी दुष्ट मन से ही निकलती हैं, इससे श्रोता के मन में क्रोध बढकर भावी विवाद का कारण बन जाता हैं, क्योंकि शस्त्र का घाव तो भर जाता है, परन्तु दुष्ट वाणी का घाव आयु भर नहीं भर पाता।

२०१. जैसे मलिन दर्पण रूप व आकृति का ज्ञान कराने में समर्थ नहीं होता, इसी प्रकार राग द्वेषादि से युक्त चित्त अपने आत्मा और परम पिता परमात्मा को साक्षात नहीं करा सकता।

२०२. मनुष्य के हर्ष करने पर और रुदन करने पर उसके मुख की आकृति बदल जाती है, इसी प्रकार जब मनुष्य सत्य बोलता है तो उसके मुख की आकृति बलवती हो जाती हैं, और जब झूठ बोलता है तो उसके मुख पर

लज्जा भरी मलीनता छा जाती है, अतः सत्य का सेवन सदा स्वास्थ बर्धक है।

२०३. मनुष्य, बन मानस, व लगूर व बन्दरों की आकृति हाथ, पैर, व मुख सब मिलती जुलती हैं। इन सबके भोजन भी अर्थात अन्न, फल आदि एक समान हैं। परन्तु मनुष्यों ने मांस भक्षण भी अपनी प्रकृति के प्रति कूल अपना लिया है जो बड़ा पाप कर्म है।

२०४. धन के लोभ में धर्म का परित्याग नीच जन करते हैं, धर्म की रक्षा के हेतु प्राण तक देना भी प्रशसनीय हैं। अतः संसार धर्मात्माओं का आदर करता है।

—*—

प्राकृतिक अनुभूत नुस्खें

१. मोतियाविन्द—दृष्टि के रहते, प्रातः सोते, उठते ही सलाई से (जस्ता, चांदी, नीम आदि) होठों पर थूक निकालकर तीन बार सलाई लव की लगाई जाए दो तीन मिनट आंख बन्द रखी जावें ताकि आंख से बाहर न न निकले। मोतिया धीरे धीरे घटता जाएगा।

यह इलाज धैर्य से करते रहना चाहिए, जब तक मोतिया साफ न हो जावे। अच्छी दृष्टि वाला भी इसका प्रयोग करे, आंखों में सुरखी, जलन, रोह कोई रोग नहीं होगा। बिना दाम व श्रम की दवा है।

२. चश्मा—प्रातः सूर्य उदय से पहले खुले स्थान पर सूर्य की ओर दृष्टि करके बैठना चाहिए, सूर्य की पिलकाई बड़ी लाभदायक हैं। जब सूर्य उदय हो जावे और किरणें तेज हो जावें तो दृष्टि नीचे कर ले यह कार्य १५ मिनट से ३० मिनठ के समय में हो सकता हैं। धैर्य से करता रहे ६ मास में चश्मा छूट जायेगा। आँखों में कोई रोग भी न होगा।

३. दांत—प्रातः सफेद सेंधा नमक सरसों के तेल में मिलाकर दाँतों व मसूड़ों पर ऊपर नीचे मलने से दांत में दर्द नहीं होगा, दांत यदि हिलता है तो वह जम जाएगा, या बिना दर्द के हाथ से पकड़कर बाहर निकाला जा सकता है। तेल मलने के पश्चात धातु की जिब्भी से जीभ साफ करनी चाहिए। पश्चात मुंह धो दिया जावे। ज्यादा सचेतना के लिए कुछ भी खाने के बाद

केवल सरसों का तेल दांतों और मसूड़ों पर मल दिया जावे। दाँतों का रोग समाप्त।

४. हाज्मा—भोजन के खाने के १ घण्टा बाद जल पिया जावे, गर्मी के दिनों में और डेढ़ घटा बाद शरद ऋतु में। भोजन खूब पचेगा, भूख लगेगी खाने का मन करता रहेगा, पेट साफ रहेगा।

५. बवासीर—शौच के लिए कम से कम एक किली जल होना चाहिए जिससे मल को अन्दर बाहर से पूरे तौर साफ किया जाये। बवासीर कभी नहीं होगी। हाज्मे का विचार जरूर रखा जावे। मूत्र समुदा को भीतर से धोना भी लाभदायक है।

६. आसन—सन्ध्या के लिये पदम आसन से बैठा जाये। चित्त काबू में रहेगा। ग्रीवा, कमर सीधी रहे न्यून से न्यून एक घटा बैठने का अभ्यास होना चाहिए रात्रि में यदि किसी कारण नींद न आती हो तो दृढता से ओ३म के ध्यान से नींद आ जाती है। साधक के ऊपर निर्भर है।

७. प्राणयाम—जैसा संध्या में संकेत किया गया है वैसे करना चाहिए। स्वाँस को बाहर निकाल कर, या भीतर भरकर एक मिनट तक रुकने से चित्त की वृत्ति खुल जाती है। परन्तु यह बुढ़ापे में न करना चाहिए इससे कष्ट हो सकता है। हाँ जो कोई जवानावस्था से कर रहा हो उसको बुढ़ापे में करते रहने से लाभ ही होगा।

८. शारीरिक आसन—सबसे उत्तम शीर्षासन है। आरम्भ दीवार के सहारे फिर किसी व्यक्ति की सहायता से भूमि पर १५ दिन में व्यक्ति इसको बिना किसी सहायता के कर सकेगा, यह आसन बहुत लाभदायक है बुढ़ापे में भी किया जावे। इससे सिर के बाल बहुत कम गिरते हैं और शीघ्र सफेद नहीं होते, सिर में दद आदि कुछ नहीं होता. व्यक्ति चुस्त बना रहता हैं थकान नहीं होता प्राणायाम और इन आसनों के करने वालों की दिल की बीमारी, पक्षाघात, रुद्र के रोग, नासूर, दमा, अक्षमान ही होते आसन व्यायाम वाले और भी हैं जैसे सर्वांग आसन, म्यूर आसन, टांगे फैलाकर अंगूठों को पकड़ना, मोर चाल, बिच्छू चाल जैसा जिसके पास समय और सुविधा हो करे लाभ ही लाभ है दीर्घ आयु होगा। शारीरिक व दिमागी श्रम में थकावट नहीं होगी हर समय हंसता खेलता सा रहेगा। किसी को कोई रोग हो या डाक्टर मना करे तो न करे। व्यक्ति कुब्ड़ा नहीं होगा।

नोट—भोजन नाश्ता हल्का दो, पेट की थैली को पूरी न भरी जावे भोजन समय पर हो। पशुओं की भांति जुगाली नहीं होनी चाहिए। शयन रात्रि में ९; ९-४० बजे प्रात: ४, ४-३० बजे उठना चाहिए प्रात: के सब कार्य, शौच स्नान; सन्ध्या आदि सूर्य उदय से पहले समाप्त हो जाने चाहिए। दिन के भोजन के बाद एक घंटा विश्राम किया जावे।

नमस्कार भजन नं० १

१. नमो वेद विद्या के प्रकाश कर्ता। नमस्कार अज्ञान के नाश कर्ता।
२. नमस्कार बल बुद्धि के देने वाले। नमस्कार दु:खों के हर लेने वाले।
३. नमो नाडी और नस के बधन से बाहर। नमो सब के आधार करुणा के सागर।
४. नमस्ते निरञ्जन अविद्या विनाशक। नमो सच्चिदानन्द घट घट में व्यापक।
५. नमस्ते निराकार निर्दोष नायक। नमस्ते परम मित्र सब के सहायक।
६. यह है मांगता आपका दास केवल। कि शुद्धि हो हृदय में बुद्धि हो निर्मल।
७. रहे आपका चित्त में नित्य सिमरन। रहूँ करता वेदोक्त आज्ञा का पालन।

भजन नं० २

१. किसी ने सन्त से पूछा कि जिह्वा का है क्या गहना।
कहा कहना वचन मीठे परन्तु सत्य यही कहना।
२. किसी ने सन्त से पूछा कि कानों का है जेवर क्या।
कहा सुनना भली बातें विचार उत्तम व शुभ गाया।
३. किसी ने सन्त से पूछा कमल से नयन है किसके।
कहा जिनमें भरी लज्जा है कोमल नयन अति उसके।
४. किसी ने सन्त से पूछा कि मुख से फूल कब झडते।
कहा जब सद विचारों के हैं मन में बीज उग पड़ते।
५. किसी ने सन्त से पूछा कि क्या महिमा भुजा बल की।
कहा जो रक्षा करता है अनाथों और निर्बल की।
६. किसी ने सन्त से पूछा कि क्या शोभा जरो धन से।
कहा जो काम आता हो गरीबों और निर्धनें के।
७. किसी ने सन्त से पूछा कि ताकत की है क्या गोली।
कहा ब्रह्मचर्य की गोली न इससे बढके है कोई।
८. किसी ने सन्त से पूछा कि सच्चा धर्म किसका है।
कहा उसका जो सरमाये प्रभु आज्ञा को धरता है।

भजन नं० ३

१. अजब हैरान हूँ भगवन तुम्हें कैसे रिझाऊ मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊ मैं।
२ करु किस तरह आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जा।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजावूं मैं।
३. तुम्ही हो मूर्ति में भी तुम्ही व्यापक हो पुष्पों में।
भला भगवान को भगवान पर कैसे चढावू मैं।
४. लगाना भोग कुछ तुमको यह इक अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जग को उसे कैसे खिलावूं मैं।
५. तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं सूरज चन्द्र और चारे।
महा अन्धेर है तुमको अगर दीपक दिखावूं मैं।
६. भुजायें हैं न सोना है न गर्दन है न पेशानी।
कि है निर्लेप नारायण कहां चन्दन लगवूं मैं।
७ बड़े नादान है वह नर घड़े जो आपकी मूरत।
बनाते विश्व को तुम हो तुम्हें कैसे बनावूं मैं।

भजन नं० ४

टेक—मत भूल मनुज पछताएगा प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
१ यह दौलत आनी जानी है यह दुनिया बहता पानी हैं।
नहीं काम तेरे कुछ आएगा प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
मत भूल मनुज पछताएगा प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
२. क्यों मोह के भूले भूल रहा, तन, धन, योवन पर फूल रहा।
नहीं काम तेरे कुछ आएगा प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
मत भूल मनुज पछताएगा। प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
३. काया दो दिन की माया हैं उड़ते पछी की छाया है।
जो आया है सो जाएगा। प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
मत भूल मनुज पछताएगा, प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
४. यह झूठा तेरा मेरा हैं, दो दिन का रैन बसेरा है।
सब यही पडा रह जाएगा, प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।
मत भूल मनुज पछताएगा, प्रभु नाम सुमर सुख पाएगा।

भजन न० ५

टेक—मेरे मालिक की दुकान पर सब का है बही खाता।
जितना जिसने जमा किया है उतना ही वह पाता।।

१. क्या साधु क्या सन्त गृहस्थी क्या राजा क्या रानी।
उसकी पुस्तक में लिखी सब की कर्म कहानी।
वह सभी के जमा खरच का सही हिसाब लगाता।
मेरे मालिक की दुकान पर सब का है बही खाता जितना जिसने——

२. ना उसके घर पक्षपात कोई न चले कोई चालाकी।
उसकी सब के लेन देन की रीति बडी है बांकी।
किसी को कौडी कम नहीं देता और न दमड़ी ज्यादा।
मेरे मालिक की दुकान पर सबका हैं बही खाता। जितना जिसने——

३ बड़े बड़े कानून हैं उसके बडी बडी मर्यादा।
पुण्य का बेड़ा पार करे है पाप को डुबाता।
इसीलिये वह इस दुनिया का जगत पिता कहलाता।
मेरे मालिक की दुकान पर सब का हैं बही खाता। जितना जिसने——

४. करते हैं इन्साफ सभी का निभयता से डटके।
उसका निर्णय कभी न उलटे लाख कोई सर पटके।
समझदार तो चूप हो जाता मूरख शोर मचाता।
मेरे मालिक की दुकान पर सब का है बही खाता। जितना जिसने——

५. ऐसी करनी कर मेरे प्यारे कर्म न होवे काला।
लाख आंखो से देख रहा है वही जो देखन वाला।
शुद्ध कमाई कर जीवन में समय बीतता जाता।
मेरे मालिक की दुकान पर सब का है बही खाता। जितना जिसने——

भजन नं० ६

टेक—चंचल मन नित ओ३म् जपाकर, ओ३म् जपाकर ओ३म् ।

१. पल पल छिन छिन घड़ि घड़ि निश दिन ओ३म् जपाकर ओ३म् ।

२. प्रातः समय की सुख बेला में, संधिया की पुलकित रजनी में ।
रोम रोम से निकले तेरे ओ३म् । ओ३म् जपाकर ओ३म् ।

३. गहरा सागर टूटी नइया जीवन तरनी ओ३म् खिवैया ।
पार करेंगे ओ३म्, ओ३म् जपाकर ओ३म् ।

४. सार सत्व की खोज किये जा, नाम सरस रस रोज पियेजा ।
ताप हरेंगे ओ३म्, ओ३म् जपाकर ओ३म् ।

भजन नं० ७

१. अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उत्थान पतन अब सब इसका सरकार तुम्हारे हाथों में ।।

२. मेरी चिन्ता बस एक यही इक बार तुम्हें पा जाऊं मैं ।
अर्पण कर दूं दुनिया भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में ।।

३. यदि जग में रहूँ, रहूँ इस विधि से कि जैसे जल में कमल रहे ।
ममजीवन नौका की होवे पतवार तुम्हारे हाथों में ।।

४. मुझ में तुझ में बस भेद यही मैं नर हूँ तू नारायण है ।
मैं हूँ संसार के हाथों में संसार तुम्हारे हाथों में ।।

५. जब जब मानव का जनम मिले तब तक चरणों की सेवा करना ।
नस नस से प्रेम टपकता हो जो बार तुम्हारे हाथों में ।।

—★—

भजन नं० ८ मानव की परिभाषा

१. है हितैषी जगतजन का दोष जो नहीं देखता।
है न ईर्षा भाव जिसमें राग द्वेष न पोसता।
इन्द्रियाँ आधीन जिसके निस्पृही और शांत है।
है वही मानव सही यह सत्य और निर्भ्रान्त है।

२. देह वाणी और मन से दुख प्राणी को न दे।
निर्विकारी अल्प तोषी जीव को सुख शान्ति दे।
सज्जनों का मित्र हो जो दूर दुर्जन से रहे।
सत कथा सुनता सुनाता जग उसे मानव कहे।

३. सात्विकी हो बुद्धि जिसकी भक्त जन का भक्त है।
सत्य हित मित वाक्य बोले दूर पापों से रहें।
हो सदा ग्राहक गुणों का मेले दुर्गुण से न हो।
स्वात्म सम समझे सभी को हैं वही मानव अहो।

४. मित्र अरि में भावना हो एकसी जिसकी सदा।
निन्द्य कर्मों मे न होवे कामना जिसकी कदा।
देख सुख वैभव पराया हर्ष मन में मानता।
चाहता जग का भला मानव उसे जग मानता।

५. रात दिन प्रभु ध्यान में जो नम्र होकर लीन हो।
दुख दुखियों का मिटाने में सदा तल्लीन हो।
लालसा जिसको न छूए गर्व से जो परे रहे।
उस मनुज के हेतु जग में प्रेम का झरना बहे।

भजन न० ९

१. मगन ईश्वर की भक्ति में अरे मन क्यों नहीं होता।
पड़ा आलस्य में मूरख रहेगा कब तलक सोता।

२. जो इच्छा हैं तेरे कट जाये सारे मेल पापों के।
प्रभु के प्रेम जल में क्यों नहीं अपने को तू धोता।

३. बिषय और भोग में फ़सकर न कर बरबाद जीवन को।
दमन कर चित्त की वृत्ति लगाले या गमे गोता।

४. नहीं संसार की वस्तु कोई भी सुख की हेतु हैं।
वृथा इनके लिये फिर क्यों समय अनमोल तू खोता।

५. धर्म ही एक ऐसा हैं जो होगा अन्त को साथी।
न पत्नी काम आयेगा न बेटा और कोई पोता।

६. भटकता जा बजा नाहक फिरे सुख के लिये सालिग।
तेरे हृदय के भीतर ही बहे आनन्द का सोता।

****

भजन नं० १०

१ मेरे देवता के बराबर जहां में कहीं देवता न कोई और होगा।
जमाने में होंगे बड़े लोग पैदा दयानन्द सा न कोई और होगा॥

२. चरित्र है देखे बड़े ऊंचे ऊंचे नज़र भर इधर भी ज़रा देख लेना।
चरित्र मिलेगा ऋषिवर का ऐसा कि देखा सुनाना कोई और होगा॥

३. इधर हो सिर्फ ब्रह्मचारी अकेला उधर हो विरोधी यह सारा ज़माना।
विजय पाने वाला दयानन्द जैसा न अब तक हुआ न कोई और होगा॥

४. उठा के जमाने का इतिहास देखो तो अपनों के लाखों हितेषी मिलेंगे।
मगर दुश्मनों का हित चाहने वाला ऋषि के सिवा न कोई और होगा॥

५. कहा मुस्करा के यह अन्तिम समय भी कि इच्छा तुम्हारी प्रभु पूरी होवे।
जैसे गया था दयानन्द प्यारा वैसे गया ना कोई और होगा॥

६. अगर विश्व भर के बड़े व्यक्तियों की जो निष्पक्ष हो करके तुलना करेतो।
दयानन्द जैसा दयानन्द ही था पथिक फैसला ना कोई और होगा॥

भजन नं० ११

१. कहा इक रोज यूं कर जोर कर शाहें उदयपुर ने।
गुरु जी आप की है नज़र गद्दी मेरे मंदिर की।
२. है लाखों का मुनाफा साथ इस गद्दी के हैं भगवन।
यह गद्दी सर ज़मीन पर खान है गोया ज्वाहर की।
३. खुशी से जिन्दगी के दिन गुज़ारो बैठकर इस जा।
कमी कुछ रह नहीं सकती यहां पर माल और ज़र की।
४. मेरी किस्मत से आप आए मुझे उपदेश देने को।
मुझे मुद्दत से थी स्वामिन जरूरत ऐसे गुरुवर की।
५. मेरा परिवार ख़िदमत में रहेगा आपकी भगवन।
मैं खुद हर वक्त दरबानी करूंगा आप के दर की।
६. मुखालिफ आपकी दुनिया है सारी आप हैं तन्हा।
मुझे डर है न कर बैठे मुख़ालिफ़ बात कुछ शर की।
७. फ़क़त इक मूर्ति पूजा का खंडन छोड़ना होगा।
न पूजें आप खुद बेशक कभी प्रतिमा को मंदिर की।
८. यह सुनकर बात राजा की ऋषि ने हसके फरमाया।
करूं इच्छा तेरी पूरी या इच्छा अपने ईश्वर की।
९. तेरे मंदिर की इस गद्दी पै कैसे धर्म को छाड़ूं।
न छोड़ूं धर्म को हरगिज़ मिले गद्दी जो इन्दर की।
१०. जिन्होंने जिन्दगी के कर लिया उद्देश को पूरा।
नहीं फिर मृत्यु उनके वास्ते वस्तु कोई डर की।
११. मैं अपने मन के इस मंदिर का मुद्दत से पूजारी हूँ।
कि जिस मंदिर से आती है ध्वनि हर बार हर हर की।
१२. किसी दुनिया के कुत्ते को हो पालो ज़र के टुकड़ों पर।
न बांधा हम फ़कीरों को कभी ज़ंजीर से ज़र की।
१३. मैं उस घर का गदा हूँ रिज़्क जोहर घर को देता है।
गदाई हो नहीं सकती ए राजन मुझ से घर घर की।
१४. मेरा मालिक वह मालिक है जो शाहों का शहन्शाह हैं।
मैं ख़िदमत छोड़ कर उसकी करूं कैसे तेरे दर की।
१५. बगल में कहके फिर आसन दबाया बस ऋषिवर ने।
कमन्डल हाथ में ले छोड़ दी भूमि उदयपुर की।
१६. हुआ जब आशकारा आत्मिक बल का नज़ारा यूं।
तो क़दमों पर ऋषि के झुक गई दर्दन मुसाफिर की।

भजन नं० १२

टेक—पानी में मीन प्यासी। मुझे देखत आवे हांसी।

१. सुख सागर सब यही रहत है निश दिन रहत निराशी।
मुझे देखत आवे हांसी। पानी में मीन प्यासी............

२. बान प्रस्थी बसे बनों में मन में रहत उदासी।
मुझे देखत आवे हांसी। पानी में मीन प्यासी............

३. कस्तूरी बन में मृग खोजत सूंघत फिरे कूछासी।
मुझे देखत आवे हांसी। पानी में मीन प्यासी............

४. आतम ज्ञान बिना नर भटकत कोई मथुरा कोई काशी।
मुझे देखत आवे हांसी। पानी में मीन प्यासी............

५. कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि बिन कटे न फांसी।
मुझे देखत आवे हांसी। पानी में मीन प्यासी............

—★—

भजन नं० १३

१. सत्ता तुम्हारी भगवन जग में समा रही है।
तेरी दया सुगन्धि हर गुल से आ रही है।

२. रवि चन्द्र और तारे तूने बनाये सारे।
इन सब में ज्योति तेरी इक जगमगा रही है।

३. विस्तृत वसुन्धरा पर सागर बहाये तूने।
तह जिनकी मोतियों से अब चमचमा रही है।

४. दिन रात प्रातः सन्ध्या मध्याह्न भी बनाया।
हर ऋतु पलट पलट कर यौवन दिखा रही है।

५. सुन्दर सुगन्धि वाले पुष्पों में रग तेरा।
वह ध्यान फूल पत्तो तेरा दिला रही हैं।

६. हे ब्रह्म विपूवकर्त्ता वर्णन हो तेरा कैसे।
जल थल में तेरी महिमा हे ईशा छा रही है।

७. भक्ति तुम्हारी भगवन ! क्यों कर हमें मिलेगी।
माया तुम्हारी स्वामी हम को भरमा रही है।

८. देवी चरण शरण है, तुझ से यहीं विनय हैं।
हो दूर यह अविद्या हमको भुला रही हैं।

भजन नं० १४

१. भरोसा कर तू ईश्वर का तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जाएगा तुझे रोना नहीं होगा।

२. कभी दुख है कभी सुख है यह जीवन धूप छाया है।
हंसी में ही बिता डालो बितानी ही यह माया है।

३. जो सुख आवे तो हंस देना जो दुख आवे तो सह लेना।
न कहना कुछ कभी जग से प्रभु से अपने कह लेना।

४. यह कुछ भी तो नहीं जग में तेरे बस कर्म की माया।
तू खुद ही धूप में बैठा तखे निज रूप ही छाया।

५. कहां यह था कहां तू था कभी तो सोच ओ बन्दे।
झुका कर सीस को कह दे प्रभु बन्दे प्रभु बन्दे।

भजन नं० १५

१. ओ दुनिया बता इस से बढ़कर फिर और हकीकत क्या होगी।
जान दे दी तलाशे हक के लिये फिर और इबादत क्या होगी।

२. यों तो हर रात की तारीकी देती है पैगाम उजाले का।
जिससे यह समाजपुर नूर हुआ उस रात की कीमत क्या होगी।

३. जहरें भी पिलाई अपनों ने, खंजर भी चलाए अपनों ने।
यह अहसां अपनों के क्या कम हैं गैरों से शिकायत क्या होगी।

४. औरों के लिये मरने वाले मरकर भी हमेशा जीते हैं।
जिस मोत से दुनिया प्यार करे उस मौत की अजमत क्या होगी।

५. सदियों की खिजां के बाद खिला इक फूल उसे भी तोड़ दिया।
कलियों के मसलने वालों से फूलों की हिफाजत क्या होगी।

****

भजन न० १६

१. सदियों से जीव भटकता पर चैन कहीं न आया।
सौ बार जिया मर-मर के फिर भी जीना न आया।

२. वृक्षों पशुओं में घूमा पर पर उपकार न सीखा।
नित नये पाप करने का ढूंढा नित नया तरीका।

३. पुण्य पाप में क्या अन्तर है यह भेद समझ न आया।
सदियों से जीव भटकता पर चैन कहीं न आया।

४. मोर पपीहा बनकर पीपी न कभी पुकारा।
सत्संग की बर्षा ऋतु में मन धोकर नहीं निखारा।
कई बार तेरे जीवन में सावन का महीना आया।
सदियों से जीव———

५. दुखिया गरीब निर्धन पर तेरी दया कभी पिन्घली ना।
पत्थर का हुआ कलेजा पत्थर का बन गया सीना।
सीने से सी न निकली और जख्म न सीना आया।
सदियों से जीव———

६. तह करके ताक पै रख दी भक्ति की सभी किताबें।
खून पिया निर्धन काया पीली जहर शराबें।
प्रभु नाम के अमृत रस का एक जाम न पीना आया।
सदियों से जीव ——

७. लाख चौरासी के चक्कर ने ऐसा फंदे में डाला।
कई बार तेरी तख्ती पें सवाल निकाला,
हर बार गलत ही निकला, एक बार सही न आया।
सदियों से जीव———

८. तेरे जीवन का पौधा जब प्रभु ने देखा भाला।
सर से एडी तक सारा, तेरा जीवन निकला काला।
सब पुण्य पड गये ठण्डे, पापों का पसीना आया।
सदियों से जीव भटकता पर चैन कहीं न आया।

—*—

भजन नं० 17

१. ओ३म् है जीवन हमारा ओ३म् प्राणाधार है।
ओ३म् है कर्त्ता विधाता ओ३म् पालनहार हैं।

२. ओ३म् है दुख का विनाशक ओ३म् सर्वानन्द है।
ओ३म् है बल तेज धारी ओ३म् करुणाकन्द हैं।

३. ओ३म् सब का पूज्य है हम ओ३म् का पूजन करें।
ओ३म् ही के जाप से हम शुद्ध अपना मन करें।

४. ओ३म् के गुरुमन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ेगी धर्म से होगी लगन।

५. ओ३म् के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जायगा।
अन्त में यह ज्ञान हमको मोक्ष तक पहुंचायेगा।

—★—

भजन नं० 18

टेक—किसी के सुख का साधन बने।

१. छोड़ खुदी के धन्दे सारे, अपना अपना आप मिटादे प्यारे,
निर्बल को तू गले लगा ले, दुखियों की तू धीर बंधा दे।
प्रभु प्रेम सागर में अपना निर्मल कर ले मन,
किसी के सुख का साधन बन ।।

२. तूने सुन्दर महल बनाया आशा का एक बाग लगाया,
मैं मेरी के फेर में पड़कर तूने अपना आप भुलाया।
भूल गया तू उसको क्या है जग म उज्जवल धन,
किसी के सुख का साधन बन ।।

३. दुनिया नश्वर झूठी मायाँ, नश्वर तेरी कन्चन काया,
सच्चा नाम हरी का जग में सच्चा वह जिसने यह पाया।
सेवा के उत्तम मारग में अर्पण कर दे तन ।
किसी के सुख का साधन बन ।।

—★—

भजन न० १९

दोहा—तृष्णा चिन्ता दीनता माया ममता हार ।
यह षट डाकनी मनुष्य का पीवत खून निकार ॥

टेक—देखो तृष्ण अजहुँ न छूटी ।

१. केस भये सब श्वेत सीस के, दांत बतीसी टूटी ।
कटि कमान, भई अंखिया दोसो कौडी की सी फूटी ॥ देखो तृष्णा.........

२. डोलन लगे पांव डगामग ज्यों चर्खा की खूंटी ।
शिथिल अग भय तबही जियन हित खावत औषध बूटी ॥ देखो तृष्णा......

३. मृग मरीचिका सी है जग में मोहिनी माया झूठी ।
धन धन भये बिहारी, जिन हरिनाम सम्पदा लूटी ॥ देखो तृष्णा.........

भजन न० २०

टेक—ममता तू न गई मेरे मन से ।

१. पाको तोहि जनम को साथी लाज गई लोकन से ।
तनथा के कर कांपन लागे बल गये सब इन्द्रियन से ।
ममता तू न गई मेरे मन से ।

२. श्रवण बचन ना सुनत काहु के, ज्योति गई नयनन से ।
टूटे दशन वचन नहीं आवत, शोभा गई मुखन से ॥ ममता तू......

३. कफ पित बात कन्ठ पर बंठे, सुतहि बुलावत कर से ।
भाई बन्धु सब परम प्यारे ना ही निकारत घर से ॥ ममता तू......

४ जैसे शशि मडल बीच सियाही छूटे न कोटि जतन से ।
तुलसीदास बलि जावूं चरण से लोभ पराये धन से ॥ ममता तू न...

**

भजन न० २१ दहेज की बोली

१. लाखों घर बरबाद हो गये इस दहेज की बोली में।
अर्थी चढ़ी हज़ारो कन्या बैठ न पाई डोली में।
कितनों ने अपनी कन्या के पीले हाथ कराने में।
कहां कहाँ तक मस्तक टेके आती शर्म बताने में।
जिस पर बीती वही जानता शब्द नहीं है कहने के।
कितनों ने बेचे मकान है अब तक अपने रहने के।
जेवर जमीन दुकान रख दिये सिरफ मांग की रोली में।
लाखों घर बरबाद हो गये.............................

२. फिर भी रुके न अब तक लगता मानवता की भाषा में।
लड़के वाले दरें बढाते जाते धन की आशा में।
क्या यही हमारा मनुज रूप है यही अहिंसा प्यारी है।
लड़की वालों की गरदन पर चला रहे वे कटारी है।
आग लगे ऐसे दहेज के मानवता की टोली में।
लाखों घर बरबाद हो गये.............................

३. अब भी चेतो लड़को वालो कन्याओं की शादी में।
नही बढावो हाथ इस तरह तुम ऐसी बरबादी में।
तुम को भी ऐसे दुख होगा जब ऐसा क्षण आएगा।
अथवा यह बेबस का पैसा तुम्हें नरक ले जाएगा।
कथन आर्य का बुरा न मानो रहे न पैसा थैली में।
लाखों घर बरबाद हो गए इस दहेज की बोली में।

भजन नं० १२

१. सब से न्यारा सबसे प्यारा प्रभु जी नाम तुम्हारा।
जिसका कोई न जग में उसका तू ही एक सहारा।
रक्षक तू है एक हमारा तू ही एक हमारा।
जिसका कोई न जग में उसका तू ही एक सहारा।

२. सारा जग हो उसका भगवन तू जिसको अपनाये।
भाग जाये दुख सारा उसका जो शरण तुम्हारी आये।
सागर में गागर मिलकर ज्यों बने जलों की धारा। जिसका कोई......

३. आते जाते दो स्वांसों का मान करें हम कैसा।
सब कुछ देने वाला तू अभिमान करें हम कैसा।
चाहे सुख दे चाहे दुख दे सब कुछ हमें स्वीकारा। जिसका कोई......

४. अपने द्वार की भक्ति दे दो अपना दास बनालो।
भटक जाउं गर कहीं तो भगवन अपनी राह दिखादो।
इस नयनन के तारे प्रभु जी मन के हो उजियारा। जिसका कोई......

५ तेरे गारे आकर प्रभु जी गया न कोई खाली।
मैं अपराधी भी आया हूं बनकर एक सवाली।
मेरे मन का दिया जलाकर दूर करो अन्धयारा।
जिसका कोई न जग में उसका तू ही एक सहारा।

**

भजन नं० १३ राष्ट्र गान

ब्राह्मण सुराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेज धारी।
क्षत्री महारथी हों अरि दल विनाश कारी।
होवें दुधारु गौवें पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही।
बलवान सभ्य योधा यजमान पुत्र होवे।
इच्छानुसार वर्षे परजन्य ताप धोवें।
फल फूल से लदी हों औषध अमोघ सारीं।
हो योगक्षेम कारी स्वधीनता हमारी।

भजन न० २४

१. ईश्वर से करते जाना प्यार ओ नादान मुसाफिर।
नय्या लगाते जाना पार ओ नादान मुसाफिर ॥
२. प्रीति ना तोड़ देना हिम्मत ना छोड़ देना।
जग में करते जाना कुछ उपकार ओ नादान मुसाफिर ॥
३. नेकों की संगति करना बदियों से हरदम बचना।
जीना जो चाहे दिन चार ओ नादान मुसाफिर।
४. जब तक है जोश जवानी, हर बिगड़ी बात बनानी।
जीना जो चाहे दिन चार ओ नादान मुसाफिर ॥
५. जीवन में सुरम्य भरले, जग को सुगन्धित करले
करना जो चाहे मौज बहार ओ नादान मुसाफिर ॥
६. ईश्वर से प्रेम रखना प्रीति फल तू मुक्ति चखना।
वरना तू डूबेगा मझधार ओ नादान मुसाफिर ॥

भजन न० 25

१. जीवन निकल गया तो जीने का ढंग आया।
जब शम्मा बुझ गई तो महफिल में रंग आया ॥
२. मन की मशीनरी ने तब ठीक चलना सिखा।
जब बूढ़े तन के हर इक पुर्जे में जग आया ॥
३. गाड़ी निकल गई तो घर से चला मुसाफिर।
मायूस हाथ मलता वापस बेरंग आया ॥
४. फुरसत के वक्त में ना सुमरन का वक्त निकला।
उसे वक्त वक्त मांगा जब वक्त तंग आया ॥
५. जीवन ने नत्था सिंह तब हथियार फेंक डाले।
यमराज फौज लेके जब करने जग आया ॥

—★—

आरती भजन न० १६

१. जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट छिन में दूर करे। जय ज़गदीश···

२. जो ध्यावें फल पावें दुख बिनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तनका। जय···

३. मात पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा आश करू जिसकी। जय···

४. तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तरयामी ।
पार ब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी। जय···

५. तुम करुणा के सागर तुम पालन करता।
मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भरता। जय···

६. तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति ।
किस विधि मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति। जय···

७. दीन बन्धु दुख हरता तुम रक्षक मेरे ।
करुणा हस्त बढाओ शरण पड़ा तेरे। जय···

८. विषय विकारो मिटाओ पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढाओ सज़्जन की सेवा। जय···

भजन न० १७

टेक—दश चिन्ह धरम के भाई महाराज मनु बतलाते।

१. पहले तुम धीरज को धारो, दूजे सब के वचन सहारो,
तीजे मन अपने को मारो। यही उपदेश सुनाते। दश चिन्ह धरम के······

२. चौथे तज चोरी का पेशा, मिटे सकल नर तेरा कलेशा,
रहो पांचवे शुद्ध हमेशा, सारे मल धुल जाते। दश चिन्ह···············

३. छटे इन्द्रियां वश में रखना, सप्तम ज्ञान बिचार में धरना,
अष्टम चित दे विद्या पढना, जिस बिन पशु कहाते। दश चिन्ह·········

४. नवम सत्य को धारण कीजे, दशवे क्रोध त्याग सब दीजे।
यही धरम लक्षण सुन लीजे। तेजसिंह समझाते। दश चिन्ह············

भजन न० २८

१. नए शरीर को पाए कर कर नर का व्यवहार।
समता चित्र में धार ले सत्पथ मैं पग धार।।
२. जो तू फूल गुलाब का हंस पुखता धर चित।
रंग बास दे जगत को पर उपकार के हित।।
३. जो तू वृक्ष समान है सहकर धूप और मेह।
पन्थी को छाया सघन फूल पात फल देह।।
४. जो तू गंग तरंग हैं धो औरों का मैल।
शीतलता का दान दे चल जो तेरी गैल।।
५. जो तू हंस स्वरूप है क्षीर नीर बिलगाय।
त्याग नीरगह क्षीर को हस का यही स्वभाव।।
६. जो तू कमल का फूल है रह जल जल उतराये।
धन सम्पत कुल पाए कर मत मन में इतराये।।

****

भजन न० २९

१. दुनिया यह कर्म क्षेत्र है कोई सरेगाह नहीं।
जब तक हैं प्राण तन में प्रभु को भूला नहीं।
२. खुश क़िस्मती से हैं मिला चोला मनुष्य का।
जीती हुई यह बाजी है इसको हरा नही।
३. बाजी बिछी हैं काम क्रोध लोभ मोह की।
खेला अगर यह खेल तो बस तू फसा नहीं।
४. धन माल जिस पे इस कदर फूला हुआ है तू।
यह तो किसी के आज तक सग में गया नहीं।
५. मत मस्त हो विषयों की मे पीके रात दिन।
ओ बेखबर दम का तेरे कुछ भी पता नहीं।
६. तृष्णा न यह मिटेगी और न भोग होंगे कम।
लेकिन तू ही मिट जाएगा तुझ को पता नहीं।
७. करना हैं धर्म कर्म जो वह करले आज ही।
कल का तो कुछ पता नहीं होगी किया नहीं।

भजन नं० ३०

१. तजो मित्र सब वासना खोजो ब्रह्म स्वरूप।
इस वासना रूपी जगत् में कोई रंक बचा न भूप।
२. मेटो सब संताप सब खोजो सुख को धाम।
थोड़ा सा जग जीवना यहां न कछु विसराम।
३ स्त्री योवन आयु धन झूठा सकल झमेल।
दो दिन लीला ईश की दो दिन का सब खेल।
४. मृग बन में भ्रमत फिरे अपनी भूल सुगंध।
त्यों सुख में फूला फिरे यह जग प्राणी अंध।
५. अपने अपने धर्म में हो तत्पर निष्काम।
माया पति जगदीश हैं सब के प्राणाधार।
६. धन्य जन्म तिनका सफल रत स्व धर्म जे वीर।
सत्य पथ नहीं टल सके जाये तो जाये शरीर।
७ धर्म हेतु हरी न रची यह मानुष की देह।
बिना धर्म निश्चय लखो केवल भिष्टा खेह।
८. यह नरतन यूं ही गयो जो नहीं खोजा सार।
जग बैरी पैदा भये अब पृथिवी पै भार।
९. यह जो अष्टक ब्रह्म को पढ़े प्रेम चित लाए।
ब्रह्म खोज लख ब्रह्म को ब्रह्म समीप हो जाए।

भजन नं० ३१

१. दो घड़ी भगवान का ले नाम तू। छोड़ कर दुनिया के सारे काम तू॥
२. दो घड़ी का ध्यान ही रंग लाएगा। दे समय थोड़ा सुबह और शाम तू॥
३. तन को अपने साफ कर आसन जमा। मन की चंचलता को प्यारे थाम तू॥
४. त्यागकर आलस्य को जा सत्संग में। प्रेम रस का भक्त वर पी जाम तू॥
५. देख तेरे काम की है बात यह। पाएगा दुनिया में फिर आराम तू॥

भजन न० ३२

१. हे प्रभु दिल में बसा हो तू ही तू। और न हो बाकी किसी की जुस्तजू ॥
२. ऐसे तेरे प्रेम को होवे लगन। जग के धन्दों में फसे न मेरा मन ॥
मैं भटकता ना फिरू फिर कूबकू। हे प्रभु दिल में बसा हो...........
३. मोह लोभ अहकार सारे दूर हों, मन के शत्रु काम क्रोध भी चूर हो।
जब मैं देखू तेरा जलवा हूंबहू। हे प्रभु दिल में बसा हो...........
४. मुझ को अपने प्रेम का अमृत पिला, जिस से रोशन जिन्दगी का हो दिया।
पाप के फदे मेरे सब काट तू। हे प्रभु दिल में बसा हो...........

—★—

भजन न० ३३ यज्ञ की महिमा

१. यज्ञ जीवन का हमारे श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है।
यज्ञ का करना कराना आर्यों का धर्म है।
२. यज्ञ से दिशि हों सुगंधित शान्त हो वातावरण।
यज्ञ से सद ज्ञान हो हो यज्ञ से शुद्धाचरण।
३. यज्ञ से हो स्वस्थ काया व्याधियां सब नष्ट हो।
यज्ञ से सुख सम्पदा हो दूर सारे कष्ट हो।
४. यज्ञ से दुष्काल मिटते यज्ञ से जलवृष्टि हो।
यज्ञ से धन धान्य हो बहु भांति सुखमय सृष्टि हो।
५. यज्ञ है प्रिय मोक्ष दाता यज्ञ शक्ति अनूप है।
यज्ञमय यह विश्व है विश्वेश यज्ञ स्वरूप है।
६. यज्ञमय अखिलेश ऐसी आप अनुकम्पा करें।
यज्ञ के प्रति आर्य जनता में अमित श्रद्धा भरें।
७. यज्ञ पुण्य प्रकाश से सब पाप ताप तिमिर हरें।
यज्ञ नौका से अगम ससार सागर को तरें।

★ आर्य समाज के नियम ★

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

—★—

—: शान्ति पाठ :—

ओ३म् द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षँ शान्ति: पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोष[illegible] शान्ति:। बनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्ति: सर्वँ शा[illegible] शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि ॥ यजु० अ० ३६ मंत्र १७

पदार्थ—द्यौ: शान्ति: अन्तरिक्षं शान्ति: पृथिवी शान्ति: आप: शा[illegible] औषधय: शान्ति: बनस्पतय: शान्ति: विश्वे देवा: शान्ति:, ब्रह्म शान्ति: स[illegible] शान्ति: शान्ति एव शान्ति: सा,मा, शान्ति एधि ॥

आदित्य सूर्य लोक शान्ति का प्रकाश दे, आकाश शान्ति की वर्षा क[illegible] भूमि माता शान्ति का उत्पादन करे समुद्र, नदी, कूप की जल धाराएं शा[illegible] दायिनी हो नाना प्रकार की सोम लता, अन्न शरीर के त्रिदोषों को दूर क[illegible] बट गूलर आदि वृक्ष बनसपतियां सुखदायक हो, सब प्रकाश करने वाले ज[illegible] ३३ देवता और विद्वान मनुष्य शान्ति देवे, ब्रह्मान्ड प्रकृति शान्त रहे सम्पू[illegible] सृष्टि हमें शान्ति देने वाली हो, शान्ति ही शान्ति बनी रहें, वही शान्ति दे[illegible] हमारे लिये दिन दूनी रात चौगनी बनी रहे। परमात्मा ऐसी कृपा करे।

नवयुग (इलै०) प्रिन्टर्स, रुड़की।